CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनतत्त्व दर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

227

…न-संख्या……………………

…शोध) संस्थान

…ा-५

………………………………

………………………………

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टि० ३४

जैनतत्व-दर्शन

श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं० २२८
दिनांक..................
नरिया, (का. हि. वि. (वा.) वाराणसी-५

लेखक —

श्रीमान् ब्र. नाथूराम जी शास्त्री

जैन उदासीनाश्रम ईशरी (बिहार)

द्वा. पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री को -

सम्पादक —

विजयकुमार चौधरी साहित्याचार्य
सा० रत्न, काव्यतीर्थ
कमलकुमार शास्त्री B. A. Bed

महावीर जयन्ती
२४९२

मूल्य
२-०-०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संघ प्रकाशन माला की चतुर्थमणि

प्रकाशक—

साहित्य समिति

श्री द्रोणप्रान्तीय नवयुवक सेवासंघ,

द्रोणगिरि, जि० छतरपुर [म० प्र०]

प्रथम आवृत्ति

१०००

मुद्रक--श्री चतुर्वेदी प्रेस, दरहाई,

जबलपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

धर्म मानव मात्र की लौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का परम लक्ष्य है परन्तु धर्म का तत्व अतिशय गम्भीर और दुर्बोध है। प्राचीन महर्षियों ने धर्म के स्वरूप का साक्षात्कार करके उसका साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया है। भारतीय जनता ने भी धर्म के तत्वों को अपने जीवन में पूर्णतया आत्मसात् कर लिया है और उसका जीवन चक्र इस धर्म-धुरी पर ही सञ्चालित होता रहता है। सांसारिक विषय भोगों में आशक्ति का परित्याग कर आत्मा को ब्रह्माभिमुख करना उसका अभीष्ट रहा है क्योंकि—

वाताभ्र-विभ्रममिदं वसुधाधिपत्य-
मापातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणाम्
धर्मः सखा परमहो परलोकयाने ॥

त्रैलोक्य का समग्र ऐश्वर्य क्षणिक एव नश्वर है। विषयों का माधुर्य तो भोगावस्था तक ही सीमित है। श्वासों की गति भी कब क्या हो जावे, इसका भी भरोसा नहीं। अतः इस जगत में धर्म ही दिव्य शक्ति है जो जीवन-यान को अव्याहत गति से परम धाम तक पहुंचा सकता है। धर्म के विपरीत आचरण मनुष्य का विनाशक है। धर्म की रक्षा में ही उसकी सुरक्षा का भाव निहित है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय समाज में जैन धर्म के सिद्धान्तों ने अभूत पूर्व क्रान्ति उत्पन्न की है। सामाजिक जीवन में पूर्ण रूप से अहिंसा की प्रतिष्ठा का श्रेय बहुत कुछ जैन आगम को है। अहिंसा का सिद्धान्त ही परम धर्म और परम ब्रह्म है—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥

इसी प्रकार अनेकान्त-स्याद्वाद का सिद्धान्त एवं अणुव्रतादि मानव मात्र के लिए परम कल्याणकारी हैं।

श्री ब्रह्मचारी नाथूराम जी शास्त्री ने जैन धर्म के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को संक्षिप्त रूप में इस पुस्तक में उपस्थित किया है। सिद्धान्तों के साथ साथ श्रावक व्रत, तीर्थ और तीर्थंकर जैन पर्व, जैन तीर्थ क्षेत्र एवं जैन धर्म के उद्धारक आचार्यों के विषय में भी पर्याप्त सामग्री पुस्तक में संग्रहीत की है जो सामान्य पाठकों के लिए जैन धर्म के सिद्धान्तों के ज्ञान के लिए अतीव उपयोगी सिद्ध होगी।

१०-२-६५

डा० श्रीकृष्ण गुप्त
संस्कृत विभागाध्यक्ष
महाकौशल महाविद्यालय
जबलपुर विश्व विद्यालय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं० ...227...
दिनांक ....

भूमिका

भारतीय संस्कृति का प्रधान स्रोत 'धर्म' है। धर्म-विहीन भारतीय जीवन की कल्पना कर सकना कुछ कठिन है। नैतिक जीवन के निर्माण द्वारा आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति धर्म का लक्ष्य है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए धर्म चिरन्तन काल से गतिशील है। भारतीय धर्म त्रिवेणी हिन्दू-बौद्ध-जैन के सङ्गम स्थल पर ही भारतीय संस्कृति पल्लवित हुई है, जिसकी सुख-शीतल छाया में अगणित प्राणियों ने अपने सन्ताप को दूर किया है, इस संस्कृति-तरु की शाखाएँ केवल देश के आँगन तक ही विस्तृत नहीं अपितु अपने पड़ोसी और सुदूर देशों को भी उसकी छाया प्राप्त हुई। इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि एक समय था, जब भारतीय धर्म-दुन्दुभि का निनाद समस्त एशिया महाद्वीप ही नहीं, उसके बाहर यूरोप के छोरों तक निनदित था, वह समय विश्व-गगन में भारतीय गौरव-चन्द्र के चमकने का था। जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियों, श्याम आदि पूर्वी देशों में तथा अफगानिस्तान, ईरान आदि पश्चिमी देशों में आज भी भारतीय संस्कृति के गौरव स्मारक विद्यमान हैं।

भारतीय संस्कृति के निर्माण में जैन संस्कृति का भी अपूर्व योगदान है और उसने भारतीय धर्मों को भी पर्याप्त रूपसे प्रभावित किया है। जैन-धर्म के अहिंसा तत्व ने यज्ञादि में होने वाली हिंसा को सदा के लिए बिदा कर दिया। जैन-धर्म भारत के प्राचीनतम धर्मों में से एक है। जैन ग्रन्थों के अनुसार तो जैन-धर्म अनादि है ही, जिसका परिशोधन अपने-अपने युग में होने वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर-धर्मतीर्थ-प्रवर्तक करते हैं, पर ऐतिहासिक खोजों ने भी सिद्धकर दिया कि जैन धर्म बहुत प्राचीन है। इस युगमें जैन धर्म के आदि-उद्धारक इक्ष्वाकु वंशी भ. ऋषभदेव हुए हैं जिनका स्मरण पुराण-शास्त्रों में बड़े आदर और श्रद्धा के साथ किया गया है। उनकी आचार-क्रियाओं का भी आदर के साथ उल्लेख किया गया है। सिन्धु सभ्यता के उद्गम ने तो उन्हें ऐतिहासिक कोटि में ला खड़ा किया है—मोहन जोदड़ों की खुदाई में अनेक प्राचीन मूर्तियों के साथ कुछ नग्न कायोत्सर्ग मुद्रा की नासाग्रदृष्टि ध्यानस्थ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिनके नीचे वृषभ अङ्कित है। [फलक १२ और ११८ आकृति ७ एवं मुहर सं. F. G. H. J.] पुरातत्व-विद् विद्वानों ने उन्हें जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की मूर्ति निरूपित किया है। देखिए डा. राधा-कुमुद मुकर्जी की Hidu civilization का अनुवाद हिन्दू सभ्यता-डा. वासुदेव शरण अग्रवाल-राजकमल प्रकाशन तृतीय संस्करण पृ. ३९) इस प्रकार जैनधर्म का मूल भारत की ताम्र-युगीन सभ्यता तक जाता है।

वेदों में भी भगवान् ऋषभदेव का उल्लेख है। इस प्रकार यह बात सिद्ध होती है कि आर्यों की सभ्यता के पूर्व भी भारत में जैन धर्म का अस्तित्व था। वेदों में जिन्हें 'व्रात्य' कहा गया है वे सम्भवत: जैन ही थे कारण जैन संस्कृति ने हिंसात्मक रूप के कारण यज्ञों का सदा विरोध ही किया है और वेदों में यज्ञों को प्रधान कर्तव्य बताया है। जो यज्ञ नहीं करते थे अथवा वैदिक देवताओं को नहीं मानते थे उन्हें वेदों में—मृध्रवाक, अकर्मन् अयज्वन् अन्यव्रत, देवपीयुः आदि शब्दों से संबोधित किया गया है। वेदों की क्रिया काण्ड का विरोधी उस समय का बहुसंख्यक जन-वर्ग रहा होगा यही कारण है कि वेदों के उत्तराधिकारी साहित्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपनिषदों में कर्म की अपेक्षा ज्ञान को प्रधानता दी गई और आत्म-तत्व के विषय में गहरा चिन्तन किया गया। अहिंसा तत्व की स्थापना की गई। विभिन्न संस्कृतियां एक दूसरी से प्रभावित रहती हैं यह इसका स्पष्ट प्रमाण है। ई. पू. ८०० में भगवान् पार्श्वनाथ एवं ई. पू. ६०० में भगवान् ज्ञातृपुत्र महावीर ने एक बार फिर से जैन संस्कृति को आलोकित किया था।

भगवान् महावीर स्वामी ने अपना धर्मोपदेश इस युग की प्रचलित लोकभाषा अर्द्ध मागधी प्राकृत में दिया था। प्राकृत उस युग में भारत की जन-भाषा थी और संस्कृत विद्वानों की भाषा। वेदों के युग में यहां जो जन-भाषा प्रचलित थी लोक के माध्यम से विकसित हुई वही भाषा वेदोत्तर-काल में प्राकृत कहलायी। आबाल-वृद्ध, नर-नारी ऊँच-नीच सब कोई मंगल-मार्ग से वञ्चित न हो इसलिए भ. महावीर स्वामी ने इसी भाषा में उपदेश देना उत्तम समझा। भ. महावीर के उपदेशों की भाषा होने के कारण जैन साहित्य और तत्व ज्ञान की अभिव्यक्ति बाद में प्रायः इसी भाषा में हुई। इस भाषा ने प्रदेश विशेष में बोली जाने के कारण महाराष्ट्री, अवन्ती शौरसेनी, मागधी, अर्द्धमागधी पैशाची अपभ्रंश आदि विविध बानें पहनें। इन भाषाओं में पर्याप्त मात्रा में जैन वाङ्मय भरा पड़ा है। यद्यपि संस्कृत भाषा के विकास काल में संस्कृत में भी जैन वाङ्मय लिखा गया।

जैन साहित्य ने भी भारतीय साहित्य के कोष को भरने में अनोखा दान दिया है। बौद्ध और वैदिक साहित्य की धारा के समान्तर जैन साहित्य-धारा भी सदा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपर्युक्त भाषाओं ने जन-भाषाओं के रूप में विकसित होकर आधुनिक प्रान्तीय हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली, उड़ीसा, पञ्जाबी, काश्मीरी आदि प्रान्तीय भाषाओं का रूप पाया। यों भाषा विकास की दृष्टि से जैन-साहित्य का अनुशीलन बड़ा महत्व रखता है।

बिम्बसार (श्रेणिक), अजात शत्रु, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्प्रति मौर्य, दक्षिण के पाण्डय, चोल, पल्लव चालुक्य गुजराज के प्रति-हार और चाहमान आदि वे नृपतिगण जैन धर्मी थे। जिनकी उदारता से जैन धर्म को फूलने फलनेका अवसर मिला ११ वीं १२ वीं शदी को तो जैन धर्म का उत्कर्ष युग ही कहना चाहिए।

एक दिन था जब भारत के समस्त प्रदेशों में जैन धर्म की दुन्दुभी बजती थी जिसके प्रतीक भारत के समस्त प्रदेशों में पाये जाने वाले तीर्थक्षेत्र एवं जैन पुरातत्व की अमूल्य सामग्री है।

आज भी जैन-जन भारत के प्रायः समस्त प्रदेशों में बिखरे हुए हैं। पर आज के जैन समाज का लक्ष्य अपने धर्म, संस्कृति कला और साहित्य के प्रति जितना उत्साह पूर्ण होना चाहिए उतना नहीं है। जीवित समाज की भाँति जिस परिमाण में जैन साहित्य लिखा जाना चाहिए नहीं लिखा जा रहा है। संस्कृति और साहित्य के विषय में हम केवल अपनी पुरानी थाती का ही उपभोग करते चले जा रहे हैं यदि यही हालत रही तो हमारा भविष्य उज्ज्वल नहीं है। अपने विपुल साहित्य के द्वारा ही कोई समाज जीवन्त माना जाता है।

अतएव हमें अपने पूर्वजों के ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाज के गृहत्यागी उदासीन व्रती श्रावकों पर तो यह उत्तरदायित्व विशेष रूप से आता है, कारण उनके मार्गदर्शन में ही जन-साधारण चलता है, यदि वे चाहें तो अपने सतत ज्ञानाभ्यास एवं ज्ञानाभिव्यक्ति के द्वारा जैन-संस्कृति के मस्तक को फिर से ऊँचा उठा सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक विद्वान् त्यागी ब्रह्मचारी श्री नाथूराम जी शास्त्री का प्रयत्न इसी ओर है। हम उनके ज्ञानाभ्यास और साहित्य-सर्जन रूप मंगल-कार्य का विशेष से अनुमोदन करते हैं।

यह पुस्तक जन साधारण को संक्षेप रूप से जैन तत्वों के समझने में उपयोगी होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

विजयकुमार चौधरी

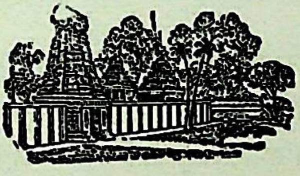

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक के दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक मैंने किसी लोकेषणा के निमित्त नहीं लिखी है। धर्म-चिन्तन और शास्त्र स्वाध्याय के बाद जो विचार मेरे मन में उठते रहे, उन्हीं को मैं लिपिबद्ध करता गया और कुछ धर्म-प्रेमी महानुभावों के स्नेहमय आग्रह के कारण सर्व साधारण को जैन धर्म के तात्त्विक एवं व्यावहारिक रूप से संक्षेप में जानकारी मिल सके इसलिए प्रकाशित करना उचित समझा। कुछ भाइयों का तो विशेष-विशेष आग्रह रहा कि पुस्तक यथाशीघ्र प्रकाशित करायी जाय। बड़ा मलहरा चातुर्मास के समय मुझ से श्री पं. विजयकुमार जी चौधरी साहित्याचार्य तथा पं. कमल कुमार जी शास्त्री ने द्रोण-प्रान्तीय नवयुवक सेवासंघ द्रोणगिरि को प्रकाशित करने हेतु देने को कहा। संघ के युवकों की धार्मिक रुचि, सामाजिक कार्यों के प्रति संलग्नता तथा अपनी जन्म भूमि के इन नवयुवकों के उत्साह ने मुझे आकृष्ट किया और यह पुस्तक उन्हें देनी ही पड़ी। पर उन के पास पुस्तक प्रकाशनार्थ अर्थाभाव की समस्या थी जिसकी पूर्ति सहयोगी दाताओं ने कर, धर्म प्रचार के कार्य में अपना महान् योग दिया है जिसके लिए वे महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

इस समय मेरे हृदय में अपने पूज्य गुरुदेव आध्यात्मिक महान् सन्त प्रातः स्मरणीय **पूज्य वर्णी जी** [स्व. श्री १०८ पूज्य मुनि गणेश कीर्ति जी महाराज] की आलोक पूर्ण स्मृति बरबस उभर रही है, जिनकी सुख शीतल छाया में मैंने अपने जीवन का बहुत सा भाग बिताया है। उनसे बहुत कुछ सीखकर आत्म-कल्याण के पथ पर अपने को बढ़ाया है, उनकी वैय्यावृत्ति करने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुझे अपूर्व अवसर मिला। उस महान् आत्मा की महत्ता को व्यक्त करने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ। उन्हीं के सत्समागम से प्राप्त ज्ञान को मैंने इस पुस्तक के रूप में स्वपर-कल्याणार्थ प्रकाशित किया है। यह पुण्य अञ्जलि उन्हीं पुण्य-चरणों में अर्पित करने का प्रयत्न किया है। मुझे विश्वास है कि वह महान् आत्मा इस अल्प भेंट को परोक्ष रूप से ही स्वीकार कर महान् बना देगी।

यदि इस पुस्तक से सर्व साधारण को कुछ भी धर्म-लाभ पहुंचा तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगा।

उक्त भाई पं. विजयकुमार जी व पं. कमलकुमार जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में जो श्रम उठाया है एतदर्थ मैं उनका धन्यवाद करता हूँ। प्रेस की कठिनाइयों वश पुस्तक के प्रकाशन में २-४ माह का विलम्ब हो गया है तदर्थ मैं उन द्रव्य-दाताओं के धैर्य की प्रशंसा करता हूँ जो पुस्तक को जल्द से जल्द प्रकाशित देखना चाहते थे।

श्रीमान् डा. श्रीकृष्ण जी गुप्त-संस्कृत विभागाध्यक्ष महाकौशल महाविद्यालय जबलपुर का मैं नितान्त आभारी हूँ जिन्होंने प्राक्कथन लिखने का कष्ट किया है।

अन्त में मैं जगत कल्याण की कामना करता हुआ पाठकों और विद्वानों से निवेदन करता हूँ कि वे इसे पढ़कर धर्मलाभ लें और यदि कोई परिमार्जनीय बात लिख गयी हो तो सूचना दें जिससे उसे आगे परिमार्जित किया जा सके।

आपका

ब्र. नाथूराम जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय-प्रकाशकीय

प्रस्तुत 'जैन तत्व दर्शन' पुस्तक के लेखक विद्वान् श्रीमान् ब्र. नाथूराम जी शास्त्री वर्तमान युग के महान् आध्यात्मिक सन्त स्व. श्री पूज्य वर्णी जी (श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी) के अन्यतम शिष्य हैं। आपका अधिकांश धार्मिक जीवन पूज्य वर्णी जी के सान्निध्य में ही बीता और उनकी अहर्निश वैय्यावृत्ति का पूर्णलाभ भी आपको ही मिला। युग की उस महान् आध्यात्मिक विभूति के संसर्ग से आपने बहुत कुछ सीखा और उसका उपयोग स्व-पर हिताय कर रहे है प्रस्तुत ग्रन्थ इसी का परिणाम है।

आपने पिछली वर्ष मलहरा चातुर्मास में यह पुस्तक हम लोगों को दिखाई थी और हमने इसे द्रोणप्रान्तीय नव युवक सेवा संघ द्रोणगिरि द्वारा प्रकाशित करने की अभिलाषा प्रकट की थी। श्रीमान् ब्रह्मचारी जी का संघ को पर्याप्त सहयोग रहता है और वे संघ के धार्मिक-सामाजिक कार्यों से अत्यन्त प्रभावित हैं, वैसे ही मातृ-भूमि के प्रति विशेष अनुराग होने के कारण आप हमारे आग्रह को टाल नहीं सके और न केवल पुस्तक ही प्रकाशनार्थ दी, बल्कि संघ के सामने साहित्य-प्रकाशनार्थ अर्थाभाव रूप जो बाधा थी उसको भी आपने उदार महानुभावों का जिनका कि नाम सूची में प्रकाशित है-परम सहयोग दिलाकर-दूर कर दिया। श्री ब्रह्मचारी जी का संघ अत्यन्त आभारी है जिनकी विशेष कृपा संघ के ऊपर सदा रहती है और हम नव युवकों को कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां हम अपने पाठकों को संक्षेप में द्रोणप्रान्तीय नवयुवक सेवा संघ का परिचय दे देना उपयुक्त समझते हैं—

द्रोणप्रान्त के अन्तर्गत दो-ढ़ाई सौ ग्राम, जिनमें जैन समाज बिखरी हुई है, आते हैं। यहां के जैन नवयुवकों की शक्ति को एकत्र कर उसे धर्म और समाज के लिये लगाना जैन बालकों को शिक्षा दीक्षा की ओर प्रोत्साहित कर उनमें धार्मिक संस्कार पैदा करना, उनमें एकता पैदा कर भाई चारे की भावना भरना, आदर्श समाज के निर्माण में उनकी रुचि बढ़ाना आदि संघ के प्रधान उद्देश्य हैं। संघ का संगठन एक निश्चित संविधान के अनुसार होता है जिससे सबकी प्रतिभा विकसित हो सके।

इस संघ ने अब तक अनेक धार्मिक सामाजिक कार्य किये जिससे उसे अनेक विद्वानों और प्रगति शील विचारकों का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ और होता रहता है।

संघ के उद्देश्यों में साहित्य प्रचार का कार्य भी रखा गया है एवं उसके लिए संघ में साहित्य समिति का गठन है।

अब तक हम इस कार्य को विशेष आगे तो नहीं बढ़ा सके है—कारण यह कार्य व्यय-साध्य है। पर तो भी प्रस्तुत प्रकाशन संघ की चौथी रचना है। हमें विश्वास है कि धार्मिक साहित्य के प्रेमी उदार महानुभावों के सहयोग से इस कार्य में हम सफल होंगे हमें यह व्यक्त करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि हम निकट भविष्य में ही अपने पाठकों के हाथों में अन्य कृतियां भी देने जा रहे हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन में ग्रन्थ लेखक श्री ब्रह्मचारी जी ने हमें पूर्ण सहयोग प्रदान किया है साथ ही सम्पादनार्थ पूरी स्वतंत्रता प्रदान की थी जिससे यह पाठकों की रुचि के अनुकूल बन सका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा, यद्यपि यह ग्रन्थ आप लोगों के समक्ष नवम्बर मास में ही आ जाना चाहिए था पर प्रेस सम्बन्धी परिस्थितियों वश इसमें विलम्ब हो गया हम अपने उदार दानी महानुभावों से इस हेतु क्षमा-प्रार्थी हैं।

पूज्य ब्र. जी ने यथा स्थान मेरे स्वयंभू स्तोत्र के अनुवादित स्फुट पदों को स्वीकार कर नमूनार्थ प्रस्तुत करने का अवसर दिया है। यदि विद्वानों ने उन्हें ठीक समझा तो समग्र रूप में अनुवाद प्रस्तुत कर सकूंगा।

हो सकता है कि पुस्तक प्रकाशन में कुछ त्रुटियां रह गई हों पर ऐसे महान् भार को धारण करने में हमारे कन्धे अभी अनभ्यस्त ही हैं। अतः पाठक एवं विद्वद्गण हमें क्षमा करते हुए आगे मार्ग निर्देशन करेंगे। हम अत्यन्त आभारी होंगे यदि आपका सहयोग—हमें आगे साहित्य प्रकाशन की ओर प्रेरणा प्रदान करे।

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशन में हमें जिन उदार महानुभावों ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया हैं उनके हम अत्यन्त आभारी हैं।

संघ के संरक्षक गुरुदेव श्रीमान् पं गोरेलाल जी शास्त्री जिनकी अगाध विद्वत्ता से हम सदा ही बहुत कुछ सीखते रहते हैं-के हम अत्यन्त आभारी हैं जिनका मार्ग दर्शन हमें सदा प्राप्त होता रहा है।

संघ की साहित्य प्रचार योजना में परम सहयोग प्रदान करने वाले श्री सेठ राजमल जी भोपाल, श्री शाह अमृतलाल जी बीना, श्री रतनचन्द्र जी लोहा व्यापारी कानपुर के भी हम सदा कृतज्ञ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संघ के अध्यक्ष श्री शाह नन्दकिशोर जी, मंत्री श्रीलक्ष्मण प्रसादजी M. A., श्री उपमंत्री चन्द्रभान जी चौरा, श्री भागचन्द जी B. A. जिनका परामर्श प्रकाशन में प्राप्त होता रहा हैं उनके प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

श्री मान् पं. मोतीलाल जी प्रतिष्ठाचार्य द्रोणगिरि, श्री मान दशरथ जी वकील, श्रीमहेन्द्र कुमार जी 'मानव' श्री सुरेन्द्र कुमार जी छतरपुर व संघ की साहित्य समिति के संयोजक श्री विद्यार्थी नरेन्द्र, संघ के पूर्व प्रधानमंत्री श्री बिहारीलाल जी मोदी मलहरा के भी हम कृतज्ञ हैं जिनका सहयोग व परामर्श संघ व साहित्य समिति को सदा प्राप्त रहता है।

संघ को अपनी कार्यक्षमता से पूर्णतया अनुप्राणित करने वाले अपने सहयोगी श्री भाई कमलकुमार जी शास्त्री B. A. Bed. को धन्यवाद दिये बिना भी कैसे रहा जा सकता है जिन्होंने न केवल सम्पादन कार्य में ही सहयोग दिया है, अपितु आप ही ऐसे व्यक्ति हैं जो संघ की गतिविधियों को पूर्ण उत्साह के साथ अग्रसारित करते रहते हैं।

२. अन्त में प्रस्तुत प्रकाशन हेतु जिन्होंने अपनी शुभ कामनाएँ व्यक्त की हैं उन सबका मैं हृदय से आभारी हूँ।

१. प्रस्तुत प्रकाशन के मुद्रक श्री पं. बाबूलाल जी चतुर्वेदी के भी हम आभारी हैं-जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में अपूर्व सहयोग दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत कुछ सावधानी वर्तते हुए भी कतिपय स्थानों पर प्रेस प्रूफ की त्रुटियाँ रह गयी हैं, पाठक गण उन्हें पढ़ते समय सुधारने का कष्ट करेंगे।

जनतंत्र दिवस
१९६६

भवद् विनम्रः—

विजयकुमार चौधरी

साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

उप संयोजक—साहित्य समिति

द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवासंघ द्रोणगिरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक का संक्षिप्त परिचय

इस पुस्तक के लेखक विद्वान् त्यागी श्री ब्र० नाथूराम जी शास्त्री का जन्म बुन्देलखण्ड के अत्यन्त रमणीक पुण्यतीर्थ क्षेत्र श्री १००८ सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि से ८ मील दूर दरगुंवाँ–जिला छतरपुर में वि० सं० १९६९ था जो एक छोटीसी बस्ती है। समाज के १०-१५ घर हैं। पिता का नाम श्री बालचन्द जी और माता का नाम श्री केशरबाई था।

आपके घर में साहूकारी का धन्धा होता था, परन्तु आप बचपन से ही उदासीन वृत्ति के थे।

बुन्देलखण्ड–भ्रमण के समय ये पूज्य वर्णी जी के सम्पर्क में आये और उनसे प्रभावित हो, उन्हीं के साथ रहने की प्रतिज्ञा ली। पूज्य श्री से आपने वि० सं० २००८ में ७ वीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये।

आपके शिक्षा–दीक्षा–गुरु वर्णी जी ही थे, उन्हीं के सान्निध्य में रहकर उनकी अनवरत सेवा करते हुए ज्ञानाभ्यास किया और शास्त्री तक की शिक्षा पायी। श्री पूज्यवर्णी शिष्यों में आपही ऐसे सौभाग्यशाली थे, जिन्हें अन्तिम समय तक पूज्यश्री की सेवा का अपूर्व अवसर मिला। आप हमेशा वर्णी जी के साथ ही रहते थे। जहाँ भी जाते थे वर्णी जी की आज्ञा से जाते थे, उनके शब्द होते थे, "भैया नत्थू जाओ, अच्छी तरह जाना, जहाँ जाओ धर्म का प्रचार करना न भूलना, जल्दी आना" ये शब्द इसलिए कहते थे, चूंकि नानाजी का सबसे अधिक सेवा का ध्यान इन्हें था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये सरल परिणामी, धुनके पक्के, निर्लोभी और परिग्रहसे रहित हैं। आपका मुख्य कार्य स्वाध्याय, तप और संयम से जीवन विताने का है।

धर्म-प्रचार की अपूर्व लगन होने से बंगाल, बिहार, आसाम, म. प्र. उत्तर प्रदेश और बुन्देलखण्ड में भ्रमण कर धर्म का प्रचार करते रहते हैं।

आप विद्वान् और लेखक भी हैं, वर्णी जी का परिचय भी इसके पहिले इनकी लिखी पुस्तक प्रकाशित हुई है, इस पुस्तक के देखने से इनकी विद्वत्ता का ज्ञान किया जा सकता है।

आज ऐसे निःस्वार्थं, धर्म प्रचारक, सरल-स्वभावी साधुओं, की आवश्यकता है।

आपका गतवर्ष वर्षा योग का ज्ञान बड़ा मलहरा की समाज को प्राप्त हुआ वहाँ ही हम लोगों की चर्चा महाराज से हुई। आपने अपनी एक इच्छा प्रगट की कि पूज्यवर्णी जी ने बुन्देलखण्ड का सबसे अधिक उपकार किया उन्हें प्रदेश खासकर श्री १००८ सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि जिसे वे "छोटा सम्मेद शिखर" कहा करते थे, रुचिकर था। यहाँ जब भी वे आते थे, महीनों रुकते थे। ऐसे स्थान पर उनकी स्मृति में एक वर्णी-स्मारक होना चाहिए जिसकी रूप-रेखा भी उन्होंने बनायी थी। इस सब की पूर्ति समाज के उदारदानी वर्णी-भक्तों पर निर्भर है। महाराज जी तो कृत-संकल्प हैं। द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवासंघ इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिये पूज्य ब्रह्मचारीजी की इस योजना को पूर्ण सहयोग देने हेतु तत्पर है। समाज से इस योजना को सफल बनाने का अनुरोध है।

नन्दकिशोर जैन
अध्यक्ष

लक्ष्मणप्रसाद जैन एम. ए.
जैनदर्शन शास्त्री
मंत्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपूर्व-सहयोग

इस पुस्तक के प्रकाशन में निम्न महानुभावों ने सहयोग प्रदान कर साहित्य प्रचार में अपना अमूल्य योगदान किया संघ इन सभी को हृदय से धन्यवाद देता है।

५००) श्री जैंसराजजी सोहनलालजी — वगड़ा डिबरूगढ़
(अपनी स्वर्गीय पूज्यनीया मातेश्वरी गुलाब बाई की पुण्य स्मृति में।)

१०१) श्री कुन्दनलाल जी पाटनी दीनहट्टा।
(स्वर्गीया पूज्यनीया मातेश्वरी की स्मृति में।)

१०१) श्री राजमल जी छावड़ा इम्फाल।
(अपने भवन के शुभमुहूर्त की स्मृति में।)

१०१) श्रीमती सौभाग्यवती धर्मपत्नी छिगनलाल जी पाटनी इम्फाल।

१०१) श्री मती सौ. धर्मपत्नी ज्ञानचन्द जी पाटनी इम्फाल

७०) श्री महिला समाज, डीमापुर।

५१) श्री भंवरलाल जी पाटनी, डिबरूगढ़।

२५) श्री महिला समाज, दीनहट्टा।

३५) श्री शाँतिलाल संतोषकुमारजी छावड़ा, दीनहट्टा।

२१) श्री शिखरलालजी वड़जात्या नागौर वाले, दीनहट्टा

२१) श्री गनेशमलजी मोहनलाल जी पाण्डया, दीनहट्टा

२१) श्री कस्तूरचन्द जी सुनवाहा वाले, गोंदिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

१ आत्म-कीर्तन १
२ शपथ ग्रहण २
३ धर्म क्या है ? ३
४ जैन आगमों में धर्म की विविध परिभाषाएँ और उनका समन्वय ६
५ त्रिरत्न ८
६ सम्यक् चारित्र की विशेष क्रियाएँ १२
७ सप्त तत्व और षड्द्रव्य १८
८ जैन धर्म के आधारभूत सिद्धान्त ३३
[द्रव्य स्वातंत्र्य, अहिंसा, अनेकान्त कर्मसिद्धान्त]
९ गृहस्थ के मूलचिह्न ४४
१० श्रावक व्रत [संवाद] ४९
११ तीर्थ और तीर्थंकर ७१
[भ. ऋषभदेव नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर]
१२ दुर्लभ मानव पर्याय की सफलता ९४
१३ जैनपर्व १००
१४ दशलक्षण पर्व [संवाद].... .... १०४
१५ चातुर्मास ११०
१६ पुण्य-पावन तीर्थ क्षेत्र ११३
[सम्मेद शिखर, पावापुरी, द्रोणगिरी, कुण्डलपुर, खजुराहा, अहार]
१७ जैन धर्म के उद्धारक [१] ११७
[कुन्दकुन्दाचार्य, समन्तभद्र, अकलङ्क, विद्यानन्दि]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८ जैन धर्म उद्धारक [२] १२०
[पूज्य आचार्य शान्तिसागर जी, पूज्य वर्णी जी, वर्णी जी का अन्तिम समय का पत्र, बैरिस्टर चम्पतराय, गुरु गोपालदास जी, क्षु. चिदानन्द जी]।
१९ स्वभाव परिणति विभाव परिणति १३७
२० भोजन शुद्धि १५०
२१ सत्श्रद्धान १६२
२२ जाप्य मंत्र १६४
२३ तात्विक चिन्तन १६६
२४ कल्याणकारी पद १६९
२५ आगम नवनीत १८३
२६ सुमन सञ्चय १९१
२७ महापुरुषों के विचारों में.... .... १९२
—जैन धर्म और भ. महावीर

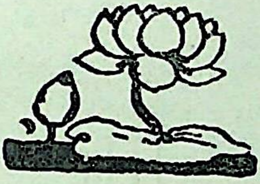

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महा मंगल मंत्र:

णमो अर्हंताणं ।
णमो सिद्धाणं ।
णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं ।
णमो लोए सव्वसाहूणं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

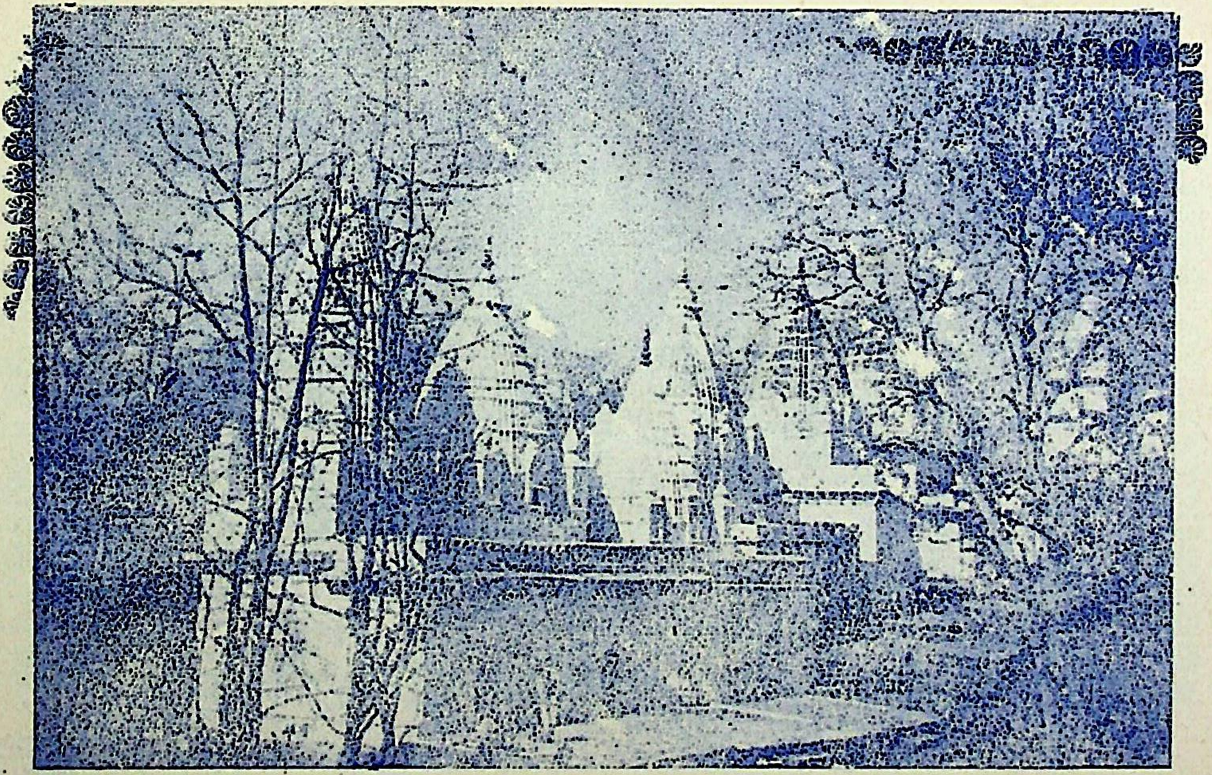

दि० जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगीरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्पण

स्व० पूज्य वर्णी जी,

बैठ तुम्हारे श्री चरणों में,
जो कुछ प्राप्त कर सका ज्ञान ।
उसे गूँथ डाला है गुरुवर,
धर तव शान्त मूर्ति का ध्यान ॥
करो इसे स्वीकार सुरभि दो,
जब सुरभित हो जावेगी ।
यह माला उन श्री चरणों के,
योग्य तभी बन पायेगी ॥

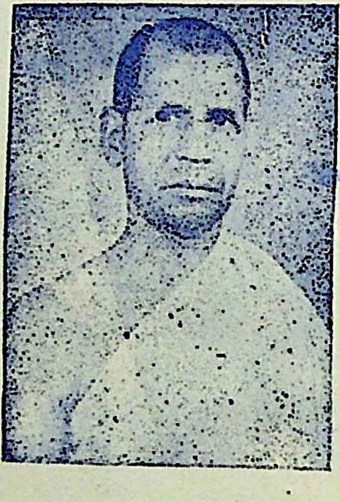

आपका भक्त—
ब्र. नाथूराम जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

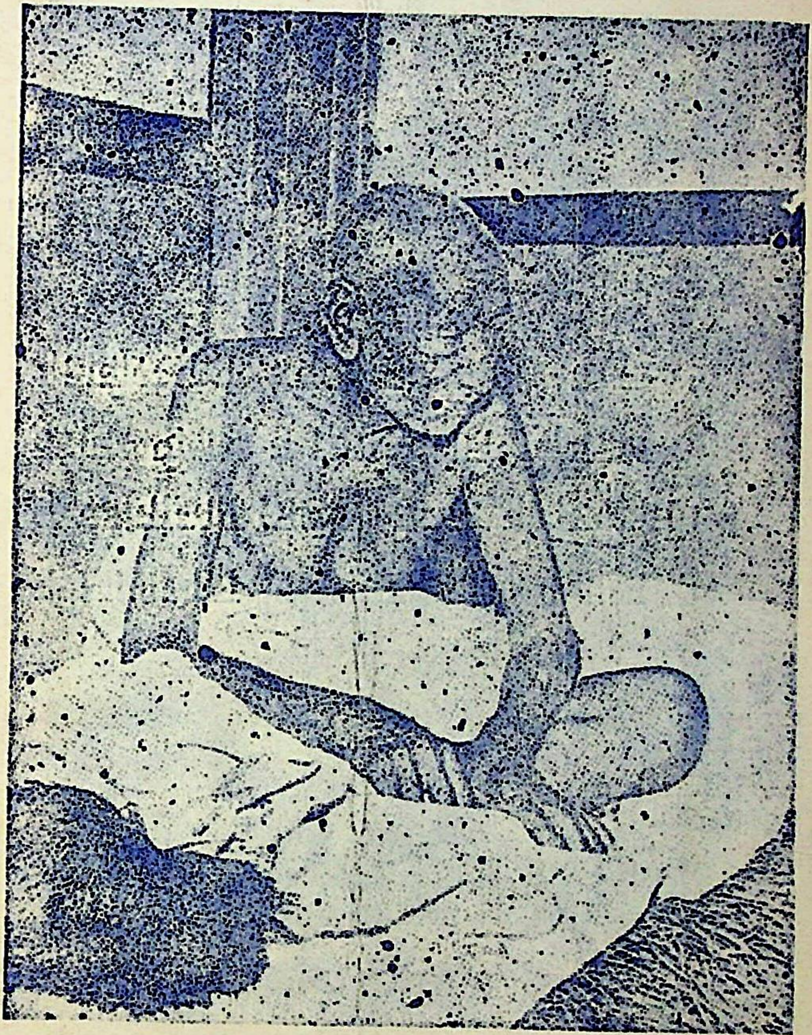

युग के महान आध्यात्मिक सन्त स्वर्गीय श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदीयावाग्गङ्गा विविधनय-कल्लोल-विमला ।
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुधजन-मरालैःपरिचिता ।
महावीरस्वामी नयन-पथगामी भवतु नः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

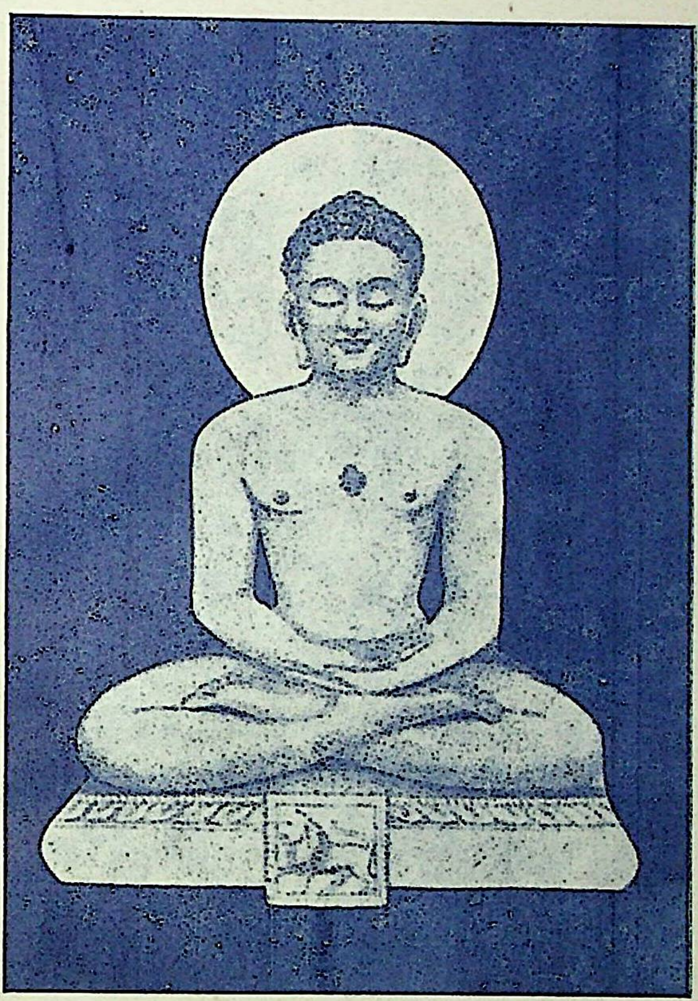

भगवान श्री महावीर स्वामी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं०................
दिनांक..................
नरिया (वाराणसी) दि. जि. (उ.) आरज़ता

मंगल-स्मरण

निर्मल गुण-गण से आभासित, कलियुग में जिनका शासन।
सब देवों में सर्वोत्तम है, जिनका इसीलिए आसन ॥
हो हतकान्ति नमन करते हैं, कुत्सितमति शासन नायक।
सन्मति वीर जिनेश नमूं नित, सन्मति शासन के दायक ॥

आत्म-कीर्तन

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता दृष्टा आतम राम।
मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान ॥
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ॥
किन्तु आश-वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान।
सुख-दुख दाता कोइ न आन, मोह-राग-रुष दुख की खान ॥
निज को निज पर को पर जान, फिर दुख का नहिं लेश निदान।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, बिष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ॥
राग-त्याग पहुचुं निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम ॥
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर-कृत परिणाम, सहजानन्द रहूं अभिराम ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शपथ-ग्रहण ।

—हम सभी सन्मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा करते हैं।

—हमारा चार को नमस्कार-अरहन्तों का नमस्कार। सिद्धों को नमस्कार। आचार्यों को नमस्कार। उपाध्यायों–तत्त्ववेत्ता तत्वोपदेष्टा गुरुओं को नमस्कार। संसार के सभी साधु-पुरुषों को नमस्कार।

—हमारे लिए चार मंगल हैं—अरहन्त मंगल हैं। सिद्ध मंगल है। साधु मंगल हैं। वीतराग परमात्मा द्वारा निरूपित धर्म मंगल है।

—हम चार को लोकोत्तम मानते हैं—अरहन्तों को लोकोत्तम मानते हैं। सिद्धों को लोकोत्तम मानते हैं। साधुओं को लोकोत्तम मानते हैं। वीतराग परमात्मा द्वारा निरूपित धर्म को लोकोत्तम मानते हैं।

हम चार की शरण स्वीकार करते हैं—अरहन्तों की शरण स्वीकार करते हैं। सिद्धों की शरण स्वीकार करते हैं। साधुओं की शरण स्वीकार करते हैं। वीतराग परमात्मा द्वारा निरूपित धर्म की शरण स्वीकार करते हैं।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म क्या है ?

धर्म एक व्यापक शब्द है जिसके अनेक अर्थ होते हैं। वस्तु के तत्त्व को धर्म कहा जाता है, जिसे उसका स्वभाव कहते हैं। जैसे अग्नि का धर्म उष्णता। आत्मा का धर्म 'चैतन्य' या ज्ञान-दर्शन। वस्तु की क्रिया को भी धर्म कहते हैं—जैसे अग्नि का धर्म जलाना, आत्मा का धर्म जानना। आकाश का धर्म स्थान देना। इनमें स्वभाव रूप धर्म तो जड़ और चेतन दोनों पदार्थों में पाया जाता है क्योंकि संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका स्वभाव न पाया जाता हो। स्वभाव या धर्म के बिना उसकी सत्ता ही लुप्त हो जावेगी। क्रियात्मक धर्म भी सब पदार्थों में पाया जाता है पर मोटे रूप में वह क्रिया जीव अर्थात् आत्मा में ही लक्षित होती है क्योंकि उपयोग-चैतन्यात्मक ज्ञान दर्शन रूप क्रिया जीव में ही सम्भव है। अतएव क्रियात्मक या आचारात्मक धर्म का सम्बन्ध आत्मा से ही है।

धर्म की उपर्युक्त परिभाषा तो तात्त्विक है। व्यावहारिक परिभाषा के अन्तर्गत मानव या मानव समाज के ऐसे कार्य या व्यवहारों को, जिनसे वह स्वयं सुखी हो और समाज को सुखी बनाने में सहायक हो धर्म कहते हैं–जैसा कि आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है–

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम् !
संसारदुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥

गृहस्थ धर्म के नियमों के प्रतिपादक ग्रन्थ की रचना के प्रसंग में वे ग्रंथ रचना के उद्देश्य के बारे में कहते हैं कि–'जो प्राणियों -(मानव मानवेतर) को संसार में जन्म–जरा–व्याधि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मृत्यु रूप दुखों से मुक्त कर उत्तम अज्ञान-निवृत्ति रूप आत्मिक सुख में लगाता है, ऐसे, आत्मोन्नति के बाधक-राग-द्वेषादि कर्मों को दूर करने वाले-सम्यक् धर्म को कहता हूँ। आचार्य ने धर्म की इस परिभाषा के अन्तर्गत विशाल दृष्टिकोण अपनाया है। जिसका तत्व यह है कि-आत्मा (व्यक्ति या समूह) की उन्नति के साधन भूत आचार विचार और व्यवहार को धर्म कहते हैं। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के कल्याण की भावना धर्म की भीतरी तह में निहित है।

धर्म का विवेचन करते समय हर तत्वदर्शी की दृष्टि स्वभाव रूप और आचार रूप उभय धर्म की ओर रही है इसीलिए प्रत्येक धर्म अपना एक दर्शन (विचारात्मक दृष्टिकोण) रखता है।

जिसमें-आत्मा क्या है ? परमात्मा क्या है ? वह कैसा है ? लोक क्या है ? परलोक क्या है ? विश्व क्या है? आदि समस्याओं क सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है। कहने को धर्म और दर्शन प्रथक्-प्रथक् हैं पर वस्तुतः वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और उनमें परस्पर अटूट सम्बन्ध है।

उदाहरण के लिए-जब आचार रूप धर्म आत्मा को परमात्मा बनाने का मार्ग बतलाता है तब आत्मा और परमात्मा के स्वभाव, उन दोनों में अंतर और उस अंतर का कारण जाने बिना आचार रूप धर्म कार्यकारी नहीं होता, कारण विचारानुसार ही आचरण प्रवृत्ति होती है।

जो यह मानते हैं कि आत्मा नहीं है, परमात्मा नहीं है, परलोक नहीं है उनका आचरण 'यावज्जीवं सुखं जीवेत ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'जब तक जियो मौज से जियो ऋण करके घी पीवो भस्म हो जाने वाले देह का फिर से आगमन तो है नहीं।' आदि विश्वासों के अनुकूल भोग प्रधान ही रहता है। पर जिन्हें आत्मा, परमात्मा लोक-परलोक आदि के विषय में विश्वास है, जो यह मानते हैं कि शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही प्राणी को शुभाशुभ फल भोगने पड़ते हैं तो उनका आचरण भोग प्रधान न होकर आत्म-प्रधान हो जाता है।

निष्कर्ष यह कि विचारों का व्यक्ति के आचार पर गहरा असर पड़ता है यही कारण है हर धर्म पर उसके दर्शन का अमिट प्रभाव है।

जैन धर्म का भी एक दर्शन है जिसे 'जैन दर्शन' के नाम से पुकारा जाता है। भारतीय दर्शनों में जैन दर्शन अपना विशेष स्थान रखता है अतएव 'जैन धर्म से मतलब 'जिन'-'अर्हत्' द्वारा प्रणीत आचार-विचार रूप उभय मार्ग है।

सद्दर्शन द्वारा समर्थित ज्ञान और आचार ही आत्मा को परमात्मा बना सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन आगमों में धर्म की विविध परिभाषाएं और उनका समन्वय।

जिस प्रकार समाज के बिना मनुष्य का काम नहीं चल सकता, वैसे ही सम्भवतः धर्म के बिना भी मनुष्य का काम नहीं चल सकता। नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति भी समय आने पर किसी न किसी धर्म का सहारा लेते देखे जाते हैं। जहां धर्म को राज-दण्ड द्वारा बहिष्कृत भी कर दिया गया वहां के लोग भी कोई न कोई धार्मिक विचारधारा रखते हैं। कारण धर्म मानव की स्वाभाविक चिन्तन-शील प्रवृत्ति का परिणाम है। वह व्यक्ति और समाज का आध्यात्मिक भोजन है। सुस्थिर और सुव्यवस्थित समाज रचना का आधार है। धर्म एक संस्था है जिसके बिना मनुष्य का काम प्रायः नहीं चल सकता।

अतः संसार के विभिन्न विचारकों ने धर्म की समय और क्षेत्र के अनुकूल विविध परिभाषाएं की हैं।

जैन आगमों में स्वयं धर्म को विविध दृष्टि कोणों से परखा गया है और तदनुकूल विभिन्न परिभाषाएं धर्म की दी गई हैं।

वस्तु स्वभाव के निरूपक द्रव्यानुयोग के ग्रन्थों में 'वत्थु सहावो धम्मो' अर्थात् वस्तु का आन्तरिक तत्व ही धर्म है। जीव द्रव्य का अन्य द्रव्य व्यावर्तक तत्व चैतन्य—ज्ञान-दर्शन उपयोग है। जैसा कि कहा गया है 'जीवो उवओगमओ' अतः जीव या आत्मा का लक्षण या धर्म जानना-देखना रूप चैतन्य ही है। यहां देखने से मतलब वस्तु का नेत्रेन्द्रिय से अवलोकन नहीं; अपितु वस्तु का सामान्य प्रतिभास मात्र है जिसे न्याय दर्शन में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्विकल्पक ज्ञान कहा गया है।

'दंशणमूलो धम्मो'—यह परिभाषा आत्म-पुरुषार्थ की प्रधानता की अपेक्षा है। दर्शन—सम्यग्दर्शन ही धर्म का मूल है।

'अहिंसा परमो धर्मः', 'चारित्र खलु धम्मो' अथवा उत्तम क्षमादि दशलक्षणो धर्मः'-ये परिभाषाएं मुख्यतः आचार परक हैं।

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम् ।
संसारदुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥

यह परिभाषा धर्मफल परक है। इसी प्रकार—'धर्मोनाम दयामूलः-दया मूल ही धर्म है।'यतोभ्युदयनिश्र यस सिद्धिः स धर्मः' जिससे इहलोक में उन्नति और परलोक में भी सुख प्राप्त हो वही धर्म है।

'राग—द्वेष-निवृत्तिरेव धर्मः'—इत्यादि अनेक परिभाषाएँ विविध दृष्टियों से की गयी हैं पर तात्विक अर्थ सबका एक ही है। यथा—

(१) वस्तु स्वभाव ही धर्म है। (२ सम्यग्दर्शन—स्वभाव रूप आत्म-दर्शन ही धर्म है। राग द्वेष रूप विकार ही हिंसा है इसका अभाव शुद्ध वस्तुस्वभाव—ज्ञान—दर्शन ही धर्म है। (४) चरित्र—आत्म-स्थिरता आत्मास्वाद रूप परिणति ही धर्म है, वह चारित्र समता रूप है समता रागद्वेष रूप चञ्चलता का अभाव है जो स्वभाव रूप है। (५) उत्तम क्षमामार्दवार्जवादि दशलक्षण रूप धर्म है-क्षमा-क्रोध विकार का अभाव मृदुता—मान विकार का अभाव आदि स्वभाव की प्राप्ति को ही फलित करते हैं, इस प्रकार समस्त परिभाषाएं परस्पर विरोध रहित हैं, और वे एक ही तत्व को प्रतिफलित करती हैं।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिरत्न ।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र

दुखों के परिताप से छुटाकर शान्ति प्रदान करने वाला, आत्मा का स्वभाव रूप वह धर्मामृत एक अखण्ड होते हुए भी अनेक विध है। जैन दृष्टि से धर्म के तीन अंग माने गये हैं। विविध धर्मों में अपनी अपनी सुविधानुसार उसके अलग अलग अंग किये हैं। बौद्ध धर्म में धर्म को 'अष्टाङ्ग' कहा गया है। जैन दृष्टि में भी धर्म के दश अंग बतलाये हैं पर मूल रूप में उसके तीन ही अंग कहे गये हैं—जैसा कि तत्वार्थसूत्रकार उमास्वामी ने कहा है—'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः—'उसी को भगवान समन्त भद्र स्वामी कहते हैं—

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।

अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र को धर्म तीर्थ के नायकों ने धर्म कहा है। उपर्युक्त आगम वाक्यों में सम्यक् या सत् पद की प्रधानता है अर्थात् वे दर्शन ज्ञानचारित्र सम्यक् या सत्—सच्चे—यथार्थ होने चाहिए। इन तीनों की एकता-समन्वय या पूर्णता ही धर्म है। इनमें परस्पर विरोध नही होना चाहिए। इनकी एकता और पूर्णता ही मोक्षमार्ग है। वस्तुतः ये अपनी अन्तिम अवस्था में एक आत्म स्वरूप हो जाते हैं।

सम्यक् दर्शन—सत्य श्रद्धान को कहते हैं। वस्तुतत्व की यथार्थ प्रतीति ही सत्य श्रद्धान है सूत्रकार ने कहा है 'तत्वार्थ श्रद्धानं-सम्यग्दर्शनम्' वस्तु जिस रूप में है उसी रूप विश्वास या प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। अथवा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥

सच्चे आप्त–आगम–गुरुओं का मूढता रहित, अष्टाङ्ग सहित, मदरहित, श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। दोनों वाक्यों में कोई मौलिक अन्तर नहीं। यह सम्यग्दर्शन ही धर्म का मूल अंग है कारण इसके बिना ज्ञान और चारित्र में समीचीनता नहीं आती। इसलिये सम्यग्दर्शन को धर्मरूप वृक्ष का मूल कहा गया है।

सम्यग्दर्शन आत्म-कल्याण के निमित्तभूत तत्वों की यथार्थ प्रतीति कराता है। आत्म-हित सबके लिये सर्वोपरि है अतः आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व का अटल विश्वास सबसे पहले होना चाहिये। जिसे आत्म-दर्शन हो गया, वह संसार के पदार्थों का विशिष्ट ज्ञाता न भी हो, तो भी उसके हित में कोई बाधा नहीं। सम्यग्दर्शन, जिसे दूसरे शब्दों में आत्मदर्शन भी कहा जा सकता है–जिस प्राणी को हो गया वह सोचता है—

एसो मे सस्सदो आदा णाणदंसणलक्खणो ।
सेसा मे वाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥

यह ज्ञान-दर्शन स्वरूप चैतन्यरस का आस्वादक आत्मा ही मेरा है, जो सदा मेरा है, रहा है, रहेगा, शेष राग-द्वेष और, उनसे उत्पन्न होने वाले भाव–पदार्थ-तो मात्र संयोगी अतएव किंचित् समय के लिए हैं।

और तब ऐसी भव्य आतमा में (१) प्रशम —शान्ति, (२) संवेग—साँसारिक भोगों से अरुचि, (३) आस्तिक्य —

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा के सत्स्वभाव का अटल विश्वास (४) अनुकम्पा— दया— परदुख कातरता-के चिन्ह दिख पड़ते हैं।

सम्यग्दृष्टि वाला प्राणी निर्भीक होता है, निरालस्य होता है; सन्तोषी होता है और आत्म-पुरुषार्थ में विश्वास रखने वाला होता है।

सच्ची दृष्टि जिसे प्राप्त हो चुकी है, वह वीतराग भाव का उपासक होता है; अतः राग-द्वेषी देवों, रागद्वेष, विषय-कषाय व हिंसादिक के पोषक शास्त्रों, विषया-भिलाषी, रागद्वेषी लोक-कीर्ति की चाहना से वेष धारण करने वाले साधुओं की उपासना नहीं करता।

इनके उपासकों के प्रति वह माध्यस्थ भाव रखता है।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं जिनका व्यवहार आत्म दृष्टि वाला प्राणी सदा करता है—वे अंग हैं—

१ निः शङ्कित—वस्तु की स्वतन्त्र सत्ता में अटल विश्वास।

२ निः कांक्षित—लौकिक सुखों में इच्छा का अभाव, अनासक्ति।

३ निर्विचिकित्सा— घृणा का अभाव। मलीन शरीर लूले लगड़े या विपन्न अवस्था को प्राप्त धर्मात्मा पुरुषों के प्रति समता।

४ अमूढता—जीवन के प्रत्येक व्यवहार में बुद्धि का सही प्रयोग।

५ उपगूहन—परदोष दर्शन को त्यागकर सद्गुणों पर दृष्टि रखना।

६ स्थितिकरण—धर्म मार्ग से गिरने वालों को सन्मार्ग पर लगाना।

७ वात्सल्य—धर्मात्मा अथवा प्राणी मात्र पर सच्चा निष्कपट प्रेम।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८ प्रभावना—सन्मार्ग के प्रसार के लिए सदा उद्योग।

सम्यग्दृष्टि वाला प्राणी—जाति, कुल, विद्या; रूप; ऐश्वर्य प्रतिष्ठा तप बल आदि लौकिक अभ्युन्नति का अहंकार नहीं करता। उसके हृदय में सदा ही विनय गुण की सरस धारा बहती रहती है।

सम्यग्ज्ञान—सम्यक् श्रद्धा के साथ होने वाले कल्याण-कारी आत्म ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहा गया है।

यह भी आठ प्रकार का है। अथवा तीर्थंकरों की वाणी के रूप में अङ्गवाह्य और अङ्गप्रविष्ट के भेद से दो प्रकार का है। जैन सिद्धान्त आत्मज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाता है वही मुक्ति में निमित्त है।

सम्यक् चरित्र—मिथ्या भाव के अभाव से आत्म प्रतीति होने पर आत्मज्ञान होता है तदनन्तर राग-द्वेषादि विकारों की निवृत्ति रूप आत्म स्थिरता प्राप्त होती है उसी को सम्यक् चारित्र या सदाचार कहते हैं। वह चारित्र आत्म स्वरूप होता है—

चारित्रं भवति यतः समस्तसावद्ययोगपरिहरणात्।
सकलकषायविमुक्तं विशदमुदासीनरूपं यत्॥

—समस्त पाप योग के परित्याग से; क्रोध-मान-माया लोभादि समस्त कषायों से रहित सांसारिक भोग्य पदार्थों की लालसा से रहित आत्म-स्वरूप सम्यक् चारित्र होता है।

वह सम्यक् चारित्र

हिंसानृतचौर्येभ्यो; मैथुनसेवापरिग्रहाभ्याञ्च।
पाप-प्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम्॥

—हिंसा-आत्म-परपीड़न, अनृत-अयथार्थ-अहितकर-कटु भाषण, चौर्य-परद्रव्य हरण, मैथुन सेवा-कुशीला चरण और परिग्रह-अत्यासक्ति रूप अति संग्रह इन पंच पापों के त्याग रूप होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन पांचों पापों का त्याग करने से अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच प्रकार का चारित्र होता है। मन-वचन व शरीर की असार-अनुचित प्रवृत्ति से हिंसादिक पाप होते हैं अतः उनसे बचने के लिए मन-वचन व शरीर की प्रवृत्ति क रकना भी चारित्र है। अहिंसा आदि का पांच व्रतों की रक्षा के लिये १—भूमि शोधकर चलना २—भाषा का संयत व मधुर प्रयोग करना। ३—शुद्ध भोजन ग्रहण करना, ४—व्यव्हारोपयोगी वस्तुओं को आलस रहित होकर यत्न पूर्वक उठाना रखना ५—निर्जन स्थान में देख शोधकर मल मूत्रादि क्षेपण करना पांच समितियां हैं—इस प्रकार सम्यक् चारित्र तेरह प्रकार का होता है।

गृहस्थ लोग इनका अंशतः ही पालन कर पाते हैं अतः उनके चारित्र को एक देश या विकल चारित्र कहते हैं।

साधु जिन्हें लौकिक कार्यों से कोई प्रयोजन नहीं, जिनका पूरा समय ध्यान, अध्ययन और तप में ही व्यतीत होता है जो सब प्रकार के परिग्रह से रहित है वे पूर्णरूप से व्रतों का पालन करते हैं अतएव उनके चारित्र को सकल चारित्र कहते हैं।

इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप धर्म-निश्चय और व्यवहार की अपेक्षा दो प्रकार का है।

जिस प्रकार अन्धे और लूले व्यक्ति दोनों मिलकर सदुपाय से अपने गन्तव्य मार्ग को पूरा करने में समर्थ होते हैं इसी प्रकार सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की एक रूपता मुक्ति का कारण होती है।

धर्म के ये तीनों अंग आत्महित के लिए अव्यर्थ, अमोघ, अमूल्य और परम श्रेष्ठ हैं अतः इन्हें रत्न भूत कहा गया है ये तीन है इसीलिये इन्हें 'त्रिरत्न' या 'रत्नत्रय' कहा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र की विशेष क्रियाएं सम्यक्

संवर क्रिया—महावीर भगवान ने कहाथा–संवर क्रिया के जरिये कर्मरूप-परमाणुओं का आत्मा में प्रवेश छह चारित्र रूप उपायों द्वारा रोका जा सकता है–

(१) गुप्ति (२) समिति (३) धर्म (४) अनुप्रेक्षा (५) परीषह जय (६) चारित्र ।

(१) गुप्तिः— तीन गुप्तियों का पालन अर्थात् योगों का भली प्रकार निग्रह करना चाहिए।

१–कर्तव्याकर्तव्य का विवेक रखते हुए शारीरिक व्यापार का नियमन करना चाहिए ।

२–प्रसंग आने पर मित भाषण या मौन धारण करना चाहिए ।

५–बुरे संकल्पों को त्यागकर अच्छे संकल्प रखना चाहिए ।

(२) समितिः— अहिंसा का पालन करने के लिये विवेक युक्त प्रवृत्ति के रूप में पांच प्रकार की समितियों का पालन करना ।

१–सावधानी पूर्वक चलना, ताकि किसी भी जीव जन्तु को क्लेश न हो ।

२–हितमित और प्रिय वचन बोलना ।

३–जीवन यात्रा में आवश्यक निर्दोष साधनों को जुटाने के लिये सावधानी पूर्वक प्रवृत्ति करना ।

४–वस्तु मात्र को भलीभांति देखकर और साफ करके लेना, व्यवहार करना, और रखना ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५--अनुपयोगी वस्तुओं को जीव-जन्तु विहीन प्रदेश में भली भांति देखकर डालना ।

(३) धर्मः—धर्म के दश अंगों का पालन करना चाहिये । १--सहनशीलता रखना, २. चित्त में मृदुता और वाह्य व्यवहार में नम्रता रखना, ३. विचार भाषण तथा वर्ताव में एकता होना, ४. निर्लोभता, अनाशक्ति तथा स्वयं-सतोष होना, ५. हितकारी एवं यथार्थ वचन बोलना ६. मन, वचन, देह अर्थात विचार वाणी, और गति का नियमन करना ७. मलिन वृत्तियों को निर्मल करने के निमित्त अपेक्षित बल की साधना के लिये आत्मा का दमन करना ८. पात्र को ज्ञानादि सद्गुण प्रदान करना ९. किसी भी वस्तु में ममत्व बुद्धि नहीं रखना, १०. त्रुटियों को हटाने के लिये सद्गुणों का अभ्यास एवं मन, वचन, और काय की पवित्रता को रखना ।

(४) अनुप्रेक्षा— जीवन शुद्धि के निमित्त बारह विषयों का गहन चिंतन करना चाहिए। अर्थात यह भावना करनी चाहिए कि-

(१) संसार में सब कुछ अनित्य है।

(२) मेरा कोई रक्षा करने वाला नहीं है।

(३) इस अनादि जन्म-मरण चक्र में न तो कोई स्वजन है और न कोई परजन है यह संसार दुखों का मूल है।

(४) अपने सुख-दुख का एकमात्र कर्त्ता-हर्त्ता-भर्त्ता मैं स्वयं हूँ।

(५) ससार, स्वजन, मित्र यहां तक कि मेरा शरीर भी मुझसे सर्वदा भिन्न है।

(६) यह शरीर सदा अशुचि है, और अशुचि से ही पलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७) आश्रव के कारण ही मैं संसार में भटक रहा हूँ।
(८) दुर्वृत्ति-द्वारों को बन्द करके ही मुझे सद्गति मिल सकती है।

(९) कर्म-बन्धनों से आत्मा को मुक्त करना ही होगा।
(१०) षड्द्रव्य मय लोक स्वयं भूत है। इसका कोई कर्ता धर्ता नहीं।
(११) दुःख-प्रभाव में बहते हुए सम्यग्दृष्टि, सम्यक् ज्ञान, और सम्यक चारित्र का प्राप्त होना दुर्लभ कार्य है।
(१२) रत्नत्रयी मार्ग से ही आध्यात्मिक स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है।

[५] परीषह:—मार्ग से च्युत न होने और कर्मों के क्षयार्थ बाईस परीषहों को सहन करना चाहिए।

१. भूख सहना, २. प्यास सहना. ३. शीत सहना, ४. गर्मी सहना, ५. डांस-मच्छरादि जन्तुओं के उपद्रव सहना, ६. नग्नता सहना, ७. अरुचिकर प्रसगों में समता रखना, ८. साधना में विजातीय आकर्षण से (काम-वासना से) न ललचाना, ९. विभिन्न स्थानों में विहार करते रहना, १०. आसन से च्युत न होना, ११. जैसी मिल जाय जैसी जमीन पर समभाव पूर्वक शयन करना,

१२ कठोर या अप्रिय वचन सहना, १३. ताड़न तर्जन को सेवा मानना, १४. दीन भाव, या अभिमान न रखते हुए याचक वृत्ति स्वीकार करना, १५. अनिष्ट वस्तु की अप्राप्ति में संतोष रखना, १६. सम भाव पूर्वक रोग सहना, १७. तृण आदि की तीक्ष्णता या कठोरता को सहना; १८. मलिन स्थिति में उद्वेग नहीं लाना, १९. सत्कार मिलने पर सुखी और न मिलने पर दुःखी नहीं होना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२०.बुद्धि कौशल के परगर्व और न होने पर खेद नहीं करना;२१. शास्त्रज्ञान में गर्वऔर अज्ञान में अपमान महसूस नहीं करना, २२.अध्यात्मिक सिद्धि न मिलने पर श्रद्धा और सन्तोष बनायेरखना।

(६) चारित्र— आत्मा को शुद्ध दशा में स्थिर रखने के लिये चारित्र पालन का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए—

(१) सम्पूर्ण अशुद्ध प्रवृत्तियों का त्याग करना चाहिए।

(२) समय-समय पर विशेष शुद्धि के निमित्त या दोषापत्ति का उन्मूलन करने के लिये नये सिरे से धर्म-दीक्षा लेना चाहिए।

(३) विशिष्ट तपः प्रधान आचार का पालनकरना चाहिए।

(४) सूक्ष्म लोभ को छोडकर क्रोधादि कषायों का उदय नहीं होने देना चाहिए।

(५) सभी कषायों को जीतकर वीतराग भाव को उत्पन्न करना चाहिए।

निर्ज़रा क्रियाः—कर्मों की निर्जरा के प्रसंग में भगवान महावीर ने बतलाया है कि वासनाओं को क्षीण करने तथा समुचित आध्यात्मिक वल की साधना के लिये शरीर, इन्द्रिय और मन को तपाया जाना चाहिए। जिन जिन उपायों से यह तपन—क्रिया होती है वे तप कहलाते हैं। कुल तप बारह हैं, जिनमें से छह शारीरिक क्रिया प्रधान वाह्यतप हैं और छह मानसिक क्रिया प्रधान आभ्यन्तर तप हैं—

वाह्यतप—१. अनशन करना, २. भूख से कम आहार करना, ३ विविध वस्तुओं के लालच को कम करना, ४. घी, दूध, दही, शक्कर, नमक, तेल तथा अन्य विकार वर्द्धक रसों का त्याग करना, ५. वाधा रहित एकान्त स्थान में रहना, ६ शरीर कष्ट की चिंता न कर धर्म ध्यान करना, ये-वाह्यतप हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आभ्यंतर तप—

(१) दोष-परिमार्जन के लिए प्रायश्चित करना।
(२) सद्गुणों एवं धर्मात्माओं में आदर भाव रखना।
(३) गुणी जनों की सेवा-शुश्रूषा करना।
(४) ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वाध्याय करना।
(५) अहंकार तथा ममत्व का त्याग करना।
(६) चित्त-विक्षेपों का त्याग करने के लिए ध्यान करना।

—:—❀—:—

स्वाधीन्याद् दुःखमप्यासीत् सुखं यदि तपस्विनाम्।
स्वाधीनसुखसम्पन्ना न सिद्धा सुखिनः कथम् ॥

—तपस्वी गण तपश्चरण द्वारा बाहर से दुख भोगते हुए से दिखने पर भी आत्मानुभव रूप सुख का अनुभव करते हैं तो फिर सहज-सुख रूप सिद्धों के आत्मास्वाद का क्या कहना !

—पूज्यपाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्त तत्त्व और षड्द्रव्य—

भगवान महावीर का धर्मोपदेश।

भ. महावीर ने वैशाली गणतंत्र राज्य के कुण्डलपुर या कुण्ड ग्राम में राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला के यहां जन्म लेकर अपना और विश्व का कल्याण किया था। भगवान् महावीर २४ वें तीर्थङ्कर थे जिनका धर्म-तीर्थ आजकल चल रहा है। उन्होंने बताया—

१ लोक रचना—इस लोक की रचयित्री कोई ईश्वरीय शक्ति नहीं है। यह लोक अनादि काल से मौजूद है और अनन्त काल तक रहेगा। यह समग्र विश्व जीव और अजीव (चेतन और जड़) इन दो तत्वों से व्याप्त (भरा) है। संसार में जो भी कार्य व्यापार हम देखते हैं वह इन दोनों ही तत्वों के पारस्परिक सम्मिश्रण और उससे उत्पन्न होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम है। जड़ और चेतन पदार्थ परस्पर मिलकर ऐसी शक्तियां उत्पन्न करते हैं जिन्हें हम जन्म, मृत्यु, जरा तथा जीवन की अन्य नानाविधि अनुभूतियों या पर्यायों के नाम से पहचानते हैं। आत्मानुशासन के जरिये इस जन्म-मरण की परम्परा को समाप्त किया जा सकता है। इसी का नाम मुक्ति है। इस क्रम में सात मान्यताओं (तत्वों) का अन्तर्भाव होता है—वह इस प्रकार हैं—जीव; अजीव; आस्रव; बन्ध संवर; निर्जरा और मोक्ष—ये तत्व हैं; इनमें—

(१)--जीवतत्व—मुक्त और संसारी जीव:—सर्व प्रथम यह समझना चाहिए कि समस्त लोक अनंत जीवात्माओं (चेतन पदार्थों) से भरा हुआ है। ये जीवात्माएँ अविनश्वर (नित्य) हैं। ज्ञान इनका मुख्य लक्षण है; जो कभी नष्ट नहीं होता। ये आत्माएँ दो तरह की होती हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्त जीव—जो स्वयं पूर्ण; स्वयं शक्तिमान; पूर्ण शुद्ध मुक्त आत्माएँ हैं जो संसार से छूटकर लोक के अग्र भाग में अवस्थित हैं।

संसारीजीव—संसारी आत्माएँ वे हैं जो अनादि से अज्ञानतावश भौतिक पदार्थों के मोह में पड़कर जन्म-मरणादि के दुःखों को भोगती हुई संसार में चक्कर काटती फिरती हैं। मुक्त आत्माओं का संसार के साथ सम्पर्क सदा के लिए छूट जाता है; जबकि संसारी सशरीर आत्माएँ सांसारिक बन्धनों में फँसी रहती हैं। संसारी आत्माओं की विशेषता यह है कि वे—१ चेतन होती हैं। २ ज्ञान और अनुभूति युक्त होती हैं; ३ अमूर्त्त स्वरूप होती हैं; ४ सृष्टि निर्माण में सक्रिय साधन होती हैं; ५ जो भी शरीर इन्हें मिले (जैसे चींटी या हाथी) उसी के अनुसार अपना आकार-प्रकार बना लेती हैं; ६ कर्मफल की भोक्ता होती हैं; ७ संसार में भ्रमण करती हैं; ८ प्रयत्न करने पर निर्वाण या सिद्धावस्था प्राप्त कर सकती हैं; एवं ९ शरीर से छूटने पर ऊपर की ओर गमन करने वाली होती है।

संज्ञी और असंज्ञी जीव:—अच्छाई और बुराई को समझने न समझने के मापदण्ड से सभी संसारी जीव (आत्माएँ) दो तरह के होते हैं—एक तो वे—जो अच्छे और बुरे का भेद-भाव समझ सकते हैं और कोशिश करने पर सही रास्ते से चलकर आत्मोद्धार कर सकते हैं। ऐसे जीव समनस्क हैं। दूसरे वे जीव हैं जिनमें हेयोपादेय का विवेक नहीं होता और यह अनुभव नहीं कर पाते कि वे पतन के गर्त में पड़े हुए हैं ऐसे जीव अमनस्क होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थावर और त्रस जीव—ज्ञान सामर्थ्य की दृष्टि से भी संसारस्थ, आत्माओं के दो विभाग किये जा सकते हैं—

(१) **स्थावर**— प्राणी स्वेच्छा से चल फिर नहीं सकते, केवल स्पर्शजन्य सुख-दुःख ही अनुभव कर सकते हैं। ये स्थावर काय के एकेन्द्रिय प्राणी हैं और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति के भेद से पांच प्रकार के होते हैं।

(२) **त्रस**— प्राणी स्वेच्छा से चल-फिर सकते हैं, डर की स्थिति होने पर भाग सकते हैं, इनकी संवेदन शक्ति के श्रोत एक से अधिक होते हैं। ये त्रस काय के गतिशील प्राणी हैं और चार प्रकार के होते हैं।

(१) कीड़े मकोड़े जैसे प्राणी-जिन्हें स्पर्शन और स्वाद (रसना) इन दो इन्द्रियों से संवेदन शक्ति प्राप्त होती है।

(२) चींटी जैसे प्राणी जिन्हें स्पर्शन, रसना और घ्राण इन तीन इन्द्रियों से सुख-दुःख की अनुभूति होती है।

(३) मधुमक्खी जैसे प्राणी-जो स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु इन चार इन्द्रियों से सम्पन्न होते हैं।

(४) मनुष्य जैसे प्राणी-जिन्हें स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पांचों ही इन्द्रियां प्राप्त होती हैं।

इस प्रकार संसारी जीव में स्थावर-त्रस दो प्रकार से भाग किये गये हैं। स्थावर काय के जीव—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति हैं, इन्हें एकेन्द्रिय जीव कहते हैं, और त्रस काय जीव, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पांच इन्द्रिय जीव होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्गति जीव—

सुख दुःख की गति या अवस्था के अनुसार भी संसारी प्राणी चार तरह के होते हैं।

(१) नारक—जो नारकीय जीवन व्यतीत करते हैं।
(२) तिर्यञ्च—जो तिर्यञ्च अर्थात् पशुओं का जीवन व्यतीत करते हैं।
(३) मनुष्य—जो मनुष्य का जीवन व्यतीत करते हैं।
(४) देव—जो देवताओं का जीवन व्यतीत करते हैं।

इनमें से मनुष्य गति सर्व श्रेष्ठ है। अन्य गति में स्थित प्राणियों को मुक्ति लाभ के लिए मनुष्य योनि धारण करना अनिवार्य है।

(२) अजीवतत्व और भेद—लोक स्थिति के दूसरे सत्य को स्पष्ट करते हुए महावीर भगवान ने कहा—'इस ससार में जड़ या अचेतन पदार्थ भी अनंत हैं। ये पांच तरह के हैं'—

(१) पुद्गल द्रव्य —अर्थात् मूर्त पदार्थ, सभी इन्द्रिय ग्राह्य वस्तुएँ, चेतन पदार्थों के विभिन्न आकार प्रकार (शरीर) मन, कर्म, परमाणु तथा अन्य भौतिक पदार्थ पुद्गल कहलाते हैं। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इनके मुख्य गुण हैं।

(२) धर्म द्रव्य—अर्थात् वह शक्ति जो स्वयं गतिहीन होते हुए भी जड़ चेतन पदार्थों को गतिशील बनाने में ठीक उसी प्रकार मात्र निमित्त रूप से सहायक होती है जैसे जल मछली को चलाने में सहायक होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव के दश प्राणों का विवरण—

जीव का विवरण	स्पर्शन	रसना	घ्राण	चक्षु	कर्ण	काय बल	वचन बल	मनबल	आयु	श्वासो-च्छ्वास	कुल प्राण
एक इन्द्रिय जीव	१	—	—	—	—	—	—	—	१	१	४
दो इन्द्रिय	१	१	—	—	—	१	१	—	१	१	६
तीन इन्द्रिय	१	१	१	—	—	१	१	—	१	१	७
चार इन्द्रिय	१	१	१	१	—	१	१	—	१	१	८
पांच इन्द्रिय असैनी	१	१	१	१	१	१	१	—	१	१	९
पाँच इन्द्रिय सैनी	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०

५ स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण—ये पांच इन्द्रियाँ हैं।

३ कायबल, वचनबल, मनबल, ये—तीन बल हैं।

१ आयु और १ श्वासोच्छ्वास इस प्रकार ये—१० प्राण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) **अधर्म द्रव्य**—अर्थात् वह शक्ति जो जड़-चेतन पदार्थों को ठहरने में ठीक उसी प्रकार मात्र निमित्त रूप से सहायक होती है जैसे वृक्ष की छाया पथिकों के ठहरने में कारण होती है।

(४) **आकाश द्रव्य**— वह शक्ति जो जड़-चेतनादि सभी द्रव्यों को अवकाश या स्थान प्रदान करती है।

(५) **काल द्रव्य**—वह शक्ति जो जड़-चेतनादि सभी पदार्थों के परिवर्तन तथा पदार्थों में नये पुराने के भेद को प्रकट करने का कारण बनती है।

धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन द्रव्य एक-एक हैं और निष्क्रिय हैं, जबकि जीव पुद्गल और काल असंख्य द्रव्य हैं। केवल पुद्गल द्रव्य मूर्त है, जबकि अन्य सभी द्रव्य अमूर्तिक हैं।

जीव, पुद्गल; धर्म; अधर्म और आकाश कायवान द्रव्य हैं अतएव इन्हें अस्तिकाय कहते हैं। कालद्रव्य कायवान् नहीं। अनाज के दानों की भांति उसके प्रदेश आपस में मिलते नहीं।

—:※※:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य का स्वरूप—

जड़ और चेतन को मिलाकर छहों पदार्थ सम्मिलित रूप रूपसे द्रव्य कहे जाते हैं। द्रव्य में तीन विशेषताएँ पाई जाती हैं—

(१) एक तो कोई भी द्रव्य स्व-स्वरूप को त्यागता नहीं है और पर-स्वरूप को प्राप्त नहीं करता है। इनमें से पहला अंश नित्यत्व और दूसरा अंश अवस्थितत्व गुण कहलाता है।

(२) द्रव्य में उत्पत्ति, विनाश और स्थायित्व (ध्रुवता) के गुण एक साथ पाये जाते हैं।

(३) द्रव्य-गुण तथा पर्याय वाला है अर्थात् प्रत्येक द्रव्य अपने परिणामी स्वभाव के कारण समय-समय में निमित्तानुसार भिन्न-भिन्न रूप में परिणत होता रहता है। तात्पर्य यह कि द्रव्य का निर्माण न तो किसी ने किया है और न इसका विनाश ही संभव है। मौलिक गुण ज्यों के त्यों बने रहते हैं, केवल इसकी पर्यायों, गुणों या परिस्थितियों में ही हेर फेर होता है। अतएव यह जगत शाश्वत (नित्य) है। अनादि-निधन है, तथा इसमें मूल तत्वों की संख्या भी एक जैसी ही रहती है।

द्रव्य—इस विश्व में कुछ ६ द्रव्य हैं। उनमें से 'जीव द्रव्य' चेतन(जानने देखने वाला)है। बाकी पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ५ द्रव्य अजीव (जड़) हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य में ६ सामान्य गुण —

प्रत्येक द्रव्य में छह सामान्य गुण अवश्य होते हैं, इसलिए ये सामान्य गुण कहलाते हैं। तथा द्रव्य (वस्तु) का स्वरूप जान लेने से वस्तु स्वरूप का ज्ञान होता है। वस्तु स्वरूप का ज्ञान होने से ही तत्वों का सच्चा विश्वास होता है। सच्चा विश्वास होने से सम्यग्दर्शन और मोक्ष मार्ग प्रकट होता है। इसलिए इन सामान्य गुणों का लक्षण समझ लेना मोक्ष मार्ग में बहुत उपयोगी है।

जिस प्रकार विज्ञान की दो धारायें हैं। एक सैद्धान्तिक और दूसरी आनुसन्धानिक (प्रायोगिक), बिना सैद्धान्तिक शिक्षण के आनुसन्धानिक दशा में प्रवेश पाना असंभव है। उसी प्रकार यहां भी द्रव्य संबंधी सैद्धान्तिक जानकारी के बिना उसकी साधना के अर्थ प्रयोग शाला में प्रवेश पाना असंभव है। क्रियाओं में लगाया जाने वाला पुरुषार्थ विफल जायगा। अतः साधना प्रारम्भ करने से पहले वस्तु स्वरूप की जानकारी कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

द्रव्य में छह सामान्य गुण इस प्रकार हैं—(१) अस्तित्व (२) वस्तुत्व (३) द्रव्यत्व (४) प्रमेयत्व (५) अगुरुलघुत्व (६) अवगाहनत्व।

अस्तित्व गुण—से पदार्थ त्रिकाल में रहता है। कोई पदार्थ नया उत्पन्न नहीं होता और न उसका नाश होता है। पदार्थ था, है और रहेगा।

वस्तुत्व गुण—से पदार्थ अपनी अपने अपने स्वभाव के अनुसार काम करता रहता है, इसी से उसका नाम वस्तु है, क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसमें वस्तुत्व गुण है। जैसे आत्मा का काम जानना है तो वह हमेशा बराबर जानता रहेगा।

द्रव्यत्व गुण—से पदार्थ त्रिकाल रहकर भी हमेशा स्वभाव से परिणमन करता रहता है। हर द्रव्य की सूक्ष्म या स्थूल पर्यायें प्रति समय बदलती रहती हैं। अस्तित्व गुण से द्रव्य तो नष्ट नहीं होता किन्तु उसकी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं।

प्रमेयत्वगुण—से पदार्थ किसी न किसी ज्ञान का विषय अवश्य होता है। पदार्थ चाहे मूर्तिक हो या अमूर्त हो, कोई न कोई ज्ञान उस पदार्थ को अवश्य जानेगा, अर्थात् ज्ञान में जानने की और पदार्थ में उसके विषय-ज्ञात-होने की शक्ति है।

अवगाहनत्व गुण—से एक पदार्थ दूसरे पदार्थ रूप नहीं होता, और न पदार्थ कम बढ़ होता है। और न उनके गुण ही नष्ट होते हैं। सब पदार्थ अपने आप में पूर्ण स्वतन्त्र हैं, कोई किसी के साधक या बाधक नहीं होते।

अगुरुलघुत्व गुण—से पदार्थ किसी न किसी अवगाहना (आकार) में अवश्य रहेगा। उसका आकार सर्वथा नष्ट नहीं होता।

इन सामान्य गुणों के ज्ञान से पदार्थ की स्वतन्त्रता का ज्ञान हो जाता है। सभी पदार्थ अपने अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में रहते हैं। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में, एक गुण का दूसरे गुण में, एक पर्याय का दूसरी पर्याय में अत्यन्त अभाव है। प्रत्येक द्रव्य का द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव अपने आप की अपेक्षा है, पर की अपेक्षा नहीं। द्रव्य और गुण स्थायी हैं, किन्तु उनकी पर्यायें बदलती रहती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) **आश्रवतत्त्व**– इसके आगे महावीर ने कहा – तीसरा सत्य यह है कि जड़ और चेतन पदार्थ एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। जो जड़ पदार्थ आत्मा से संबंध स्थापित करते हैं व कर्म परमाणु कहलाते हैं। और ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्द्रिय गोचर नहीं होते। आत्मा में कर्म-परमाणुओं का आश्रव मन, वचन, और काय की क्रिया के फल स्वरूप होता है जिसे योग कहा जाता है। इन कर्म-परमाणुओं में से कुछ तो ऐसे होते हैं जो

(१) आत्मा की ज्ञान-शक्ति को आवृत कर लेते हैं।

(२) कुछ आत्मा की शुद्धदर्शन शक्ति को ढककर अशुद्ध दशा उत्पन्न कर देते हैं।

(३) कुछ सुख-दुःख की वेदना उत्पन्न कर सांसारिक पदार्थों का वेदन कराते हैं।

(४) कुछ दर्शन और चारित्र इत्यादि के सम्बन्ध में आत्मा के सही दृष्टिकोण को दूषित करके इन गुणों को घातते हैं, नाना प्रकार की अभिलाषाएँ, आसक्ति और मोह उत्पन्न करते हैं।

(५) कुछ जीव की आयु का निर्धारण करते हैं।

(६) कुछ शरीर निर्माण का कार्य करते हैं।

(७) कुछ जन्म के समय वंश-परम्परा; राष्ट्रीयता, जाति; कुटुम्ब; सामाजिक स्थिति इत्यादि का निर्धारण करते हैं।

(८) कुछ आत्मा की सहज स्वाभाविक शक्तियों को अवरुद्ध कर उन अच्छे कामों को करने से रोकते हैं, जिन्हें करने की आत्मा इच्छा करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४ बन्ध तत्व—तत्पश्चात् महावीर भगवान ने बन्ध तत्व के व्याख्यान में कर्मों के बन्ध को इस प्रकार समझाया कि—

जड़ और चेतन का यह सम्पर्क कुछ शक्तियों को उत्पन्न करता है। प्राणी की भावना के अनुसार वातावरण में फैले हुए कर्म परमाणु आत्मा के साथ दूध और पानी की तरह परस्पर घुल-मिल जाते हैं। किंतु इस मिलावट से दोनों ही तत्वों के स्वाभाविक गुणों का सर्वथा नाश नहीं हो जाता, केवल संबद्ध कर्म-परमाणुओं की योग्यता तथा परिमाण के अनुसार उन गुणों के कार्य रुक जाते हैं। इस प्रकार के मिश्रण के फल स्वरूप आत्मा में उस नये व्यक्तित्व का निर्माण होता है जिसमें दोनों तत्वों के मौलिक गुण तो हैं पर साथ ही परस्पर संबंध से नई वैभाविक शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है।

कर्म बन्ध के पांच कारण हैं—

(१) वस्तु विषयक यथार्थ श्रद्धान का अभाव या अयथार्थ ज्ञान।
(२) दोषों से विरत न होना या शिथिलाचरण।
(३) कर्तव्याकर्तव्य में असावधान रहना।
(४) समभाव की मर्यादा को तोड़ना।
(५) मानसिक, वाचिक तथा कायिक प्रवृत्ति।

ये कर्म-परमाणु सुख-दुख देने के स्वभाव को बनाते हैं। बन्ध-काल की मर्यादा निश्चित करते हैं। फलानुभाव में तीव्रता या मन्दता उत्पन्न करते हैं। और स्वभावानुसार कर्म-परमाणुओं का विभाजन भी करते हैं।

(५) संवरतत्त्व—महावीर ने लोक-स्थिति विषयक अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पांचवें सत्य को इस प्रकार स्पष्ट किया—कर्म आगमन का निरोध रूप संवर एक तरह से आत्मा के इर्द-गिर्द घेरा बन्दी है जिसके फलस्वरूप आत्मा में कर्म परमाणुओं का प्रवेश रुक जाता है, उतने उतने अंश में आध्यात्मिक विकास क्रम भी बढ़ता जाता है।

(६) निर्ज़रातत्त्व—उन्होंने बतलाया कि जैसे-जैसे आत्मा में नवीन कर्मों का प्रवेश रुकता जाता है और आध्यात्मिक विकास का क्रम बढ़ता जाता है वैसे-वैसे आत्मा से बंधे हुए कर्म-परमाणुओं का झड़ना भी जारी रहता है। कर्मफल की परिपक्वता पर सम्बन्धित कर्मों के झड़ने के कारण आत्मा स्वाभाविक रूप से मुक्त होता रहता है। इस प्रकार अंशतः क्षय की स्थिति निर्जरा कहलाती है और यह मोक्ष का पूर्ववर्ती अंग है। स्वाभाविक रूप से कर्मों का क्षय एक लम्बी प्रक्रिया है। सदाचार के द्वारा जान बूझकर परिपक्वता के पहले ही कर्म बन्ध को समाप्त किया जा सकता है। परिपक्वता का काल आने पर कर्मों का आत्मा से स्वाभाविक रूप से झड़ना सविपाक 'निर्जरा' है और परिपक्वता काल के पूर्व ही व्रताचरण के जरिये कर्मों से आत्मा को स्वतन्त्र करना अविपाक 'निर्जरा' कहलाती है।

(७) मोक्षतत्त्व—अन्त में महावीर भगवान ने कहा—इस प्रकार सर्व कर्म-बन्धनों का सर्वथा क्षय होना ही मुक्ति या मोक्ष है। इस स्थिति में आत्मा और कर्म-परमाणु एक दूसरे से पूर्णतया पृथक् हो जाते हैं और नये कर्म-परमाणुओं के साथ उसके नये गठबन्धन की सम्भावना सदा के लिये समाप्त हो जाती है।

इन सात सत्यों को लोक रचना का मौलिक तत्व समझना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए। इनमें से प्रथम दो मूल तत्व हैं और विश्व के स्थायित्व को प्रगट करते हैं, बाकी पांच इन दोनों में उत्पन्न होने वाली शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया को परिलक्षित करते हैं।

महावीर की ईश्वर विषयक उपलब्धि :—

तदनन्तर महावीर ने अपने उत्तर का उपसंहार इस प्रकार किया—हे पंडितो! लोक रचना और ईश्वरीय शक्ति के संबंध में मेरी उपलब्धि का सारांश यह है—

(१) इस विश्व में सभी संसारी प्राणियों का व्यक्तित्व द्विधात्मक है—भौतिक और आध्यात्मिक। इन दो तत्वों के संयोग से उनके व्यक्तित्व की रचना हुई है। यह एक अशुद्ध स्थिति है, जैसे खान में अन्य धातुओं की मिलावट के साथ पड़ा हुआ सोना। प्रत्येक संसारी आत्मा अनादिकाल से इस मिलावटी स्थिति में भटक रहा है।

(२) संसारी आत्माओं की यह अशुद्धता कर्म बंध के कारण है, किन्तु यदि वे चाहें तो इस बंधन को तोड़-फोड़ कर स्वाधीन हो सकते हैं।

(३) प्रत्येक प्राणी अपनी वर्तमान स्थिति में अपूर्ण होते हुए भी अपनी आध्यात्मिक शक्ति का विकास करके भौतिक परिस्थितियों पर काबू पा सकता है, अर्थात् अपनी वासनाओं और विचारों पर नियंत्रण करके वह जन्म, मरण के जंजाल से छूटकर भव-सागर को पार कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) किंतु, मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रयत्न स्वयं ही करना होगा, क्योंकि अच्छे या बुरे कार्यों के प्रति करने वाला व्यक्ति स्वयं ही उत्तरदायी होता है। अपने द्वारा किये गये कार्य-फल का भोग उसे स्वयं ही करना होगा, अपने इस उत्तरदायित्व से वह कदापि छूट नहीं सकता। कोई भी ईश्वर, देवदूत पैगम्बर या अन्य कोई दिव्य शक्ति उसके जीवन प्रवाह में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। क्योंकि इस संसार का निर्माण और उसमें चलने वाला कार्य व्यापार किसी ईश्वरीय शक्ति के वरदान का फल नहीं है। सांसारिक घटनाओं का उत्तरदायित्व संसारी अथवा पदार्थों पर ही है और जो प्राणी जैसा करेगा वैसा फल भी उसे भुगतना होगा। यह विश्व शाश्वत है, सनातन अनादि निधन है ?

आत्मिक स्वाधीनता की पूर्णता के अतिरिक्त ईश्वरत्व और कुछ नहीं है। इतना कहकर महाश्रमण ने उन वेदानुयायी ब्राह्मणों से प्रश्न किया—क्या विश्व के स्वरूप के संबंध में आप लोगों के मन में अभी भी कोई संशय है।

पंडित और ब्राह्मण इस नये जीवन दर्शन से इतने अधिक प्रभावित हुए कि सभी एक साथ कहने लगे—हे! महाश्रमण! अपना शिष्य बना लें। महावीर भगवान् ने स्वीकार किया और उन्हें अपने धर्म में दीक्षित कर लिया। फिर क्या था, दीक्षाग्रहण की होड़ लग गई, सहस्रों नर-नारियों ने महावीर की शरण में आकर अपने आपको कृत-कृत्य माना। अपने अनुयायियों की व्यवस्था करने के लिए उन्होंने चतुर्विध संघ की स्थापना की और उन ग्यारह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वानों को अपने धर्म-शासन का उत्तराधिकारी-गणधर-बनाया। अब भगवान महावीर की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी।

प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है, वह शक्ति आत्मा के सच्चे विश्वास, आत्मज्ञान और 'आत्मा के सिवाय सब पदार्थ आत्मा के साधक-बाधक नहीं, आत्मा का सुख आत्मा में है—ऐसा जानकर अपने स्वभाव में स्थिर होने से प्रगट होती है। इस प्रकार निर्णय होने पर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप प्रवृत्ति स्वभावतः ही होने लगती है। आत्म-शक्ति की ओर झुकना आत्म धर्म या निश्चय धर्म है। अहिंसादि रूप प्रवृत्ति व्यवहार धर्म है।

—※※—

सनताभ्यस्तभोगानामप्यसत्सुखमात्मजम् ।
अप्यपूर्वं सदित्यास्था चित्ते यस्य स तत्त्ववित् ॥

—'निरन्तर अभ्यास में आये हुए इन्द्रिय भोगों का सुख असत्य है, आत्मा से उत्पन्न सहज सुख सत्य एवं अपूर्व है— ऐसी श्रद्धा जिसके चित्त में है वही तत्त्व-ज्ञानी है।

— पद्मनन्दी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन धर्म के आधार भूत सिद्धांत

प्रत्येक धर्म के कुछ आधार भूत सिद्धान्त होते हैं जिन पर उसका अस्तित्व टिका रहता है। जैन धर्म की भी कुछ अपनी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर वह विश्व धर्मों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है, वे विशेषताए ये हैं —

[१] द्रव्य स्वातंत्र्यवाद—जैन दृष्टि में द्रव्य को पूर्ण स्वतन्त्र माना गया है। प्रत्येक द्रव्य अपने अपने गुण पर्यायों से विशिष्ट है। द्रव्य उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य त्रयात्मक है। ध्रौव्य गुण विशिष्ट होने के कारण वह त्रिकाल सदात्मक है। उत्पाद–व्यय शील होने के कारण वह क्षण–क्षण परिणमन शील है। प्रत्येक द्रव्य स्वय सत्तावानस्व का स्वामी है। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर कोई अधिकार नहीं। अनन्त जड़-चेतन द्रव्यों के समूहभूत लोक का कोई कर्ता–धर्ता–हर्ता नहीं। लोक स्वयंभूत है। लोक में जितने द्रव्य हैं, उतने ही थें और उतने ही रहेंगे। क्योंकि सदात्मक वस्तु का कभी अत्यन्ताभाव नहीं हो सकता।

भावस्य णत्थि णासो णत्थि अभावस्य चेव उप्पादो।
गुणपज्जएसु भावा उप्पाद वयं पकुव्वंति ॥

— पंचास्तिकाय।

किसी भाव का अर्थात् सत् का अत्यन्त नाश नहीं होता और किसी अभाव अर्थात् असत का कभी नवीन उत्पाद नहीं हो सकता, सभी पदार्थ अपने गुण और पर्याय रूप से उत्पाद–व्यय करते रहते हैं। इनकी गुण-पर्यायों में अवश्यंभावी परिवर्तन होता रहता है, पर स्वयं की ही शक्ति से क्योंकि सत्ता का लक्षण ही – 'उत्पाद-व्यय ध्रौव्ययुक्त' सत्'—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चैतन्य-ज्ञान-दर्शन स्वरूप आत्मा भी एक पूर्ण स्वतंत्र द्रव्य है। चाहे तो वह स्वपुरुषार्थ से परमात्मा बन सकता है चाहे संसार में ही नर-नारक-तिर्यक-देव रूप दुखों को भोगता रह सकता है। आत्मा की पूर्ण शुद्धावस्था का नाम ही परमात्मा पद है। जिन आत्माओं ने उस पूर्ण शुद्ध अवस्था को पा लिया है वे सब आत्माएँ 'परमात्मा' की कोटि में हैं। आगे भी जो आत्माएँ ऐसा पुरुषार्थ कर पूर्णता को प्राप्त होंगी, परमात्मा कहलायेंगी। इस प्रकार जैन दृष्टि में परमात्मा या ईश्वर एक नहीं अनन्त हैं।

अनन्त शक्तियों का पुंज होते हुए भी वे परमात्मा सर्वशक्तिमान् नहीं, हां अपनी अनन्त आत्म शक्तियों के वे पूर्ण धनी हैं।

परमात्मा 'अर्हन्त' या जिनेन्द्र अथवा 'सिद्ध' लोक के कर्ता धर्ता नहीं। वे तो पूर्ण वीतराग, लोकालोक के दृष्टा, सर्वज्ञ, आनन्द स्वरूप आत्मा के आस्वादक होते हैं। इच्छा-राग-द्वेष का अभाव होने से उनमें पर का कर्तापन कैसा ?

[२] अनेकान्त—वस्तु स्वभाव से अनन्त धर्मात्मक हैं वे धर्म परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं जैसे—वस्तु नित्य भी है, अनित्य भी है, सत् भी है, असत् भी है। एक भी है, अनेक भी है। सामान्य रूप से भी है, विशेष रूप से भी है। इन परस्पर विरोधी धर्मों का समन्वय करने वाला, उनको यथार्थ रूप से समझाने वाला अनेकान्त ही है। अनेकान्त एक दर्शन है जो परस्पर विरोधी दो धर्मों का अपेक्षा भेद से संग्रह कराता है। अन्यथा वस्तु के पूरे सत्य का दर्शन सम्भव नहीं। प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य, अपने क्षेत्र, अपने काल और अपने भाव रूप से सत् है। घट घट रूप से सत्तावान् है पट रूप से नहीं। जिस क्षेत्र में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह है, उसी क्षेत्र की अपेक्षा से है, अन्य क्षेत्र की अपेक्षा से नहीं। जिस काल में वह है उसी काल की अपेक्षा से है, अन्य काल की अपेक्षा से नहीं। अपनी सत्ता से ही वह है, पर की सत्ता से नहीं। इस प्रकार अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव (अस्तित्व) की अपेक्षा है और पर द्रव्य, पर क्षेत्र, पर काल, पर भाव की अपेक्षा से नहीं भी है। प्रत्येक वस्तु अपने अखण्ड ध्रौव्य स्वभाव की अपेक्षा से नित्य है किन्तु पर्यायों की अपेक्षा से अनित्य भी है। समान्य की अपेक्षा तत्व रूप में एक भी है, विशेष की अपेक्षा अनेक भी है।

जिस प्रकार दही को मथने वाली ग्वालिन एक हाथ को ढीला करती है तब दूसरे हाथ को खींचती है इसी प्रकार वस्तु के उभय पहलुओं को एक साथ देखने के लिए अपनी एक दृष्टि को जरा ढीला (गौण) और दूसरी दृष्टि को दृढ़ (प्रधान) बनाना पड़ता है तभी वस्तु का सत्य-नवनीत प्राप्त होता है। दृष्टि सापेक्षता के अभाव में वस्तु के पूर्ण सत्य का पाना असम्भव है।

यदि वस्तु स्वभाव को अनेकान्त के परिप्रेक्ष्य में न देखा जाय तो सब वस्तुएँ सब रूप हो जावें, सब क्षेत्र रूप हो जावें, सब काल रूप हो जावें अर्थात् उनकी यथार्थ सत्ता का लोप ही हो जाय।

स्याद्वाद—अनेकान्त दृष्टि से देखे गये पदार्थों का यथार्थ भाव व्यक्त हो सके इसके लिए 'स्याद्वाद' शैली को अपनाना पड़ता है। स्याद्वाद अनेक विरोधी धर्मों से युक्त वस्तु के एक धर्म को एक दृष्टिकोण से पूरी तरह दृढ़ करता है। स्याद्वाद में **'स्याद् + वाद'**—ये दो शब्द हैं, स्याद्पद विध्यर्थक है जो वस्तु के एक दृष्टिकोण से एक धर्म के निश्चय के साथ, विरोधी धर्म की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्ता की भी सूचना देता है। 'वस्तु स्यादस्त्येव' का तात्पर्य यह है कि वह यद्यपि स्व स्वरूप की अपेक्षा से है ही पर, पर-स्वरूप की अपेक्षा नहीं भी है।

अनेकान्त प्रमाण रूप है स्याद्वाद नय रूप। यह स्याद्वाद सप्त भंग रूप में है—१ स्यादस्त्येव, २ स्यान्नास्त्येव, ३ स्यादस्ति नास्त्येव, ४ स्यादवक्तव्य, ५ स्यादस्ति अवक्तव्य, ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य ७ स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य।

अनेकान्त हमारी दृष्टि को विशाल बनाता है जिस विशाल दृष्टि के द्वारा वह हमें वस्तु के पूरे सत्य को ग्रहण कर सकने की क्षमता प्रदान करता है। अनेकान्त के आलोक में कहीं कोई संशय नहीं वह तो ऐसा प्रकाश-सूर्य है जिसके आलोक में पदार्थ यथावत् अवभासते हैं। अनेकान्त समस्त विरोधों को दूर करता है और मानसिक अहिंसा की प्रतिष्ठापना करता है।

स्याद्वाद वस्तु को यथास्वरूप व्यक्त करता है, वाचनिक अहिंसा का आधार स्याद्वाद है जो अपने माधुर्य से सबके अन्तकरणों को द्रवित कर देता है। वचनों की पवित्रता स्याद्वाद शैली को अपनाये बिना नहीं हो सकती।

[३] अहिंसा—अहिंसा जैन धर्मका मूल सिद्धान्त है। यों तो अहिंसा का सिद्धान्त प्रायः सभी धर्म अपनाते हैं पर केवल सामाजिक व्यवहार के पालन के लिए। जैन सिद्धान्त तो **'अहिंसा परमोधर्मः'** अहिंसा को परम धर्म मानता है उसे ही वह परम ब्रह्म मानता है—**अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्।**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसीलिए जैन सन्तों ने अहिंसा भावना का मूलस्पर्शी चित्रण किया है—अमृत चन्द्र स्वामी पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय में कहते हैं—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥

आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है और राग-द्वेष, काम-क्रोधादि भावों की आत्मा में उत्पत्ति ही हिंसा है यही जिनागम का संक्षिप्त अहिंसा सम्बन्धी विवेचन है।

इसका तात्पर्य यही है कि आत्मा की स्वभाव-च्युति वैभाविक-विकार मय परिणति ही हिंसा है और स्वभावस्थिरता-स्वाभाविक परिणमन ही अहिंसा है। आत्मा का यह स्वाभाविक परिणमन ही पर ब्रह्म परमात्मा स्वरूप है। इस प्रकार जैन सिद्धान्त हिंसा—आत्म-पर-पीड़न के कारण स्वरूप भावों को ही हिंसा बतलाता है जिन भावों के अभाव में कोई भी आत्मा पूर्ण अहिंसक हो सकता है। अहिंसा की इस साधना के लिए मन-वचन और काय की प्रवृत्ति को सतत नियमित रखने और सर्वत्र अप्रमाद-यत्नाचार वर्तने का विधान किया गया है।

क्योंकि प्रमादी पुरुष पहले आत्मा द्वारा आत्मा की हिंसा करता है दूसरे प्राणियों की हिंसा हो या न हो—

स्वय मेवात्मनाऽत्मानं हिनस्त्यात्मा प्रमादवान् ।
पूर्वं प्राण्यन्तराणां तु पश्चाद् स्याद्वा न वा वधः॥

परन्तु सतत सावधान व्यक्ति, जो अपने आत्मा को राग द्वेषादि विकारों से बचाने में प्रतिक्षण जागरूक है वह यद्यपि लोक स्थिति में वर्तता हुआ जन्तुओं से भरे लोक में द्रव्य हिंसा से बच नहीं सकता है, तो भी अहिंसक ही है क्योंकि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि ।
नहि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव ॥

— योग्य आचरण—जीव हिंसा न हो जाय—ऐसा विचार कर यत्नपूर्वक क्रिया करने वाले सन्त पुरुषों के रागद्वेषादि के आवेश के विना केवल प्राणघात हो जाने से हिंसा कभी नहीं होती।

इसीलिए जैन आगमों में हिंसा के दो भेद किये हैं—१. द्रव्य हिंसा २. भाव हिंसा। भाव हिंसा से अपने को बचाने में सावधान प्राणी द्रव्य हिंसा का भागी नहीं होता। गृहस्थ के जीवन में अहिंसा का व्यवहार कैसे हो सके उसके लिए हिंसा के चार भेद किये गये हैं।

१. **आरम्भी**—गृह कार्यों में अवश्यंभावी हिंसा।
२. **उद्योगी**—खेती, व्यापार आदि आजीविका के कार्यों में होने वाली हिंसा।
३. **विरोधी**—सिद्धान्तों की रक्षा के लिये अनचाहे भाव से कर्तव्य के नाते आवश्यक रूप से होने वाली हिंसा।
४. **संकल्पी**—प्रमाद के योग से राग-द्वेष मय भावों से होने वाली आत्म-पर-पीड़न रूप हिंसा।

गृहस्थ केवल संकल्पी हिंसा से ही बच सकता है उसी हिंसा से उसे बचना चाहिए। अतएव एक जैन गृहस्थ देश, समाज, व्यक्ति, धर्म या सिद्धान्त की रक्षा के लिए वीरता पूर्वक शस्त्र उठा सकता है और तब भी अहिंसक रह सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

य: शस्त्रवृत्तिः समरे रिपुः स्यात् यः कण्टको वा निजमण्डलस्य च।
अस्त्राणि तत्रैव नृपाः क्षिपन्ति न दीनकानीनशुभाशयेषु ॥

—अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध भूमि में जो शत्रु बन कर आया हो या अपने देशका शत्रु हो उसी पर सच्चे क्षत्रिय-नृपति गण अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करते हैं दीनों, निहत्थों, कायरों और सदाशय वाले प्राणियों पर नहीं।

अतएव अहिंसा का व्यवहार समाज-धर्म में अव्यावहारिक नहीं। हाँ संकल्पी हिंसा से तो गृहस्थ को बचना ही पड़ता है। उद्योग व्यापार कृषि गृहकार्य में भी जितनी हिंसा बच सके, बचाना ही चाहिये। अहिंसात्मक जीवन अपनाने की भावना के लिए निम्न पद्य को हृदयंगम करना चाहिए —

त्रस-हिंसा को त्याग वृथा थावर न संघारे।
परवधकार कठोर निन्द्य नहिं वचन उचारे ॥

अनेकान्त स्याद्वाद एवं द्रव्य स्वातंत्र्य दृष्टि अहिंसा सिद्धान्त के कवच हैं। इन सिद्धान्तों से ही सर्वोदय तीर्थ की उद्भावना हुई है। महावीर की स्तुति करते हुए समन्तभद्र स्वामी कहते हैं।

दया-दम-त्याग समाधिनिष्ठं,
नय-प्रमाण-प्रकृताञ्जसार्थम् ।
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रवादै-
र्जिन, त्वदीयं मतमद्वितीयम् ॥

सर्वान्तवत्तद्गुण-मुख्य-कल्पं,
सर्वान्त-शून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं,
सर्वोदयं तीर्थमिदं त्वदीयम ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[४] कर्म सिद्धान्त—'कर्मप्रधान विश्व रचिराखा जो जस करै मो तस फल चाखा।' हिन्दी के महान् कवि, भारत के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास जी की यह उक्ति है—अर्थात् संसारी प्राणियों का यह आवागमन रूप संसार, जीव का चतुर्गतियों में भ्रमण-जन्म, जरा-व्याधि-मरण-दुख ये सब कर्म निमित्तक हैं। जीव जो शुभाशुभ कर्म करता है तदनुसार वह सांसारिक सुख-दुख रूप फल का अधिकारी होता है। जैन आगमों के अनुसार यह संसारी प्राणी अनादि काल से कर्म स्पृष्ट अर्थात् कर्मों के बन्धन में बँधा है। ये कर्म वस्तु स्वरूप जड़ कार्माण पुद्गल वर्गणाओं के पुञ्ज हैं, जो जीव की राग-द्वेष की क्रिया के कारण आकृष्ट हो कर कषायवान आत्मा से मिल जाते हैं। यथार्थ में कर्म भौतिक पुद्गल परमाणु पुञ्ज है तथापि कषायवान जीव अपनी यौगिक क्रिया से इन को बाँधता है, अतएव वह इनका कर्ता है और ये उसके 'कर्म' हो जाते हैं।

परिणमदि जदा आदा सुहम्मि असुहम्मि रागदोषजुदो।
ते पविसदि कम्मरयं णाणावरणादि भावेहिं ॥

—जब यह आत्मा रागद्वेष से युक्त होकर शुभ या अशुभ भावों में परिणमता है उस समय इस आत्मा में ज्ञानावरण आदि भावों के रूप में कर्म-रज प्रवेश करती है।

संसारी जीव अनादि से कर्म-बद्ध है पर जीव का जीवत्व अंश मात्र पुद्गल-कर्मरूप नहीं होता और न कर्म परमाणु कभी जीवत्व रूप ही धारण कर सकता है जीव अपने अनादि विकारी भाव के द्वारा नवीन-नवीन कर्मों का बन्ध करता है और यह परम्परा कार्य-कारण रूप में आगे बढ़ती रहती है यदि एकबार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी यह आत्मा अपने पुरुषार्थ के द्वारा पूर्ण स्वभाव की उपलब्धि करले तो सदा के लिये कर्म-मुक्त हो जावे। जिस प्रकार उड़द की दाल और उसके छिलके का शुरू से नित्य सम्बन्ध है पर एकबार छिलके को दाल से अलग कर देने पर फिर वह उड़द रूप नहीं हो सकता इसी प्रकार आत्मा एक बार पूरी तरह कर्म बन्धन से मुक्त हो ले, सिद्धावस्था को प्राप्त करले तो वह फिर संसारावस्था को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि उसको बाँधने वाले कर्मों का उससे पूरी तरह अलगाव हो गया अब बन्ध के कारण के अभाव में बन्ध रूप कार्य कैसे हो। -

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाऽङ्कुरः।
कृत्स्नकर्मप्रमुक्तेऽपि न तथैव भवाऽङ्कुरः॥

—बीज के जल जाने पर जिस प्रकार फिर अङ्कुर की उत्पत्ति नहीं होती उसी पर कर्मबन्ध की कारण-परम्परा के नष्ट होने पर पूरी तरह कर्मों से छूट जाने पर संसाररूप अङ्कुर की उत्पत्ति नहीं होती।

ये कर्म तीन प्रकार के होते हैं।

१. **भावकर्म**—राग-द्वेष, काम-क्रोधादि वैभाविक भाव।

२. **द्रव्य कर्म**—आत्म-शक्तियों को आवृत करने वाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय वेदनीय, आयु नाम, गोत्र।

३. **नोकर्म**—औदारिक आदि शरीर।

भावकर्मों से द्रव्य कर्मों का बन्ध होता है द्रव्यों कर्मों से आत्मशक्तियों, का आवरण रूप घात होता है। सुख-दुख शरीरा द प्राप्त होते हैं फिर शरीरादि की शुभाशुभ प्रवृत्ति से रागादि पैदा होते हैं, इस प्रकार यह परम्परा चलती रहती है। द्रव्य कर्मों में—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय-घाति कर्म कहलाते हैं क्योंकि वे आत्म स्वभाव का घात करते हैं मोहनीय कर्म इनमें प्रधान है जो सब कर्मों को रस प्रदान करता है इसके द्वारा आत्मा के दर्शन और चारित्र गुणों का घात होता है। शेष वेदनीय-आयु-नाम-गोत्र अघाति कर्म हैं इनमें आत्मा के स्वभाव को घातने की शक्ति नहीं।

(१ **ज्ञानावरण**—आत्मा के ज्ञान स्वभाव का घातक है यह ५ प्रकार का है।

(२) **दर्शनावरण**—आत्मा के दर्शन स्वभाव को ढाँकता है यह ९ प्रकार का है।

(३) **मोहनीय**—आत्मा के दर्शन और चारित्र गुण को घातता है यह २८ प्रकार का है।

(४ **अन्तराय**—यह आत्म शक्तियों को अपना भोग करने में वाधा पहुंचाता है यह ५ प्रकार का है।

(५) **वेदनीय**—सुख-दुख अनुभव कराने में निमित्त होता है।

(६) **आयु**—यह जीव को एक निश्चित समय तक एक ही अवस्था में बाँधे रखता है। यह ४ प्रकार का है।

(७) **नाम**—यह जीव के तरह-तरह के शरीर और उनकी रचनाओं का निमित्त बनता है यह १४८ प्रकार का है।

(८) **गोत्र**—यह जीव को उच्च-नीच कुलों में तदनुकूल आचरण करने को बाध्य करता है। यह २ प्रकार का है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन कर्मों की दश अवस्थाएँ होती हैं।

(१) बन्ध (२) सत्ता (३) उदय (४) उदीरणा (५) उपशम (६) संक्रमण (७) उत्कर्षण (८) अपकर्षण (९) निधत्ति और (१०) निकाचन।

काय वचन और मन की कम्पन रूप प्रवृत्ति से कर्मों का आगमन ही आश्रव होता है 'काय-वाङ् मनः कर्म-योगः स आश्रवः।' शुभ रूप योगप्रवृत्ति से शुभ कर्मों तथा अशुभ रूप योग प्रवृत्ति से अशुभ कर्मों का आश्रव होता है तथा मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योगों से कर्मों का बन्ध होता है।

'मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाः बन्धहेतवः'

(१) मिथ्यात्व--अतत्व श्रद्धान रूप आत्म-परिणति।

(२) अविरति—शरीर वचन मन की अनियमित प्रवृत्ति । आत्मा का वह भाव जिससे राग-द्वेष की वृद्धि हो।

(३) प्रमाद—आत्मा के पुरुषार्थ शून्य शैथिल्य रूप भाव।

(४) कषाय—आत्मा को अनुरञ्जित करने वाले क्रोध-मान-माया-लोभ रूप परिणाम।

(५) योग—मन-वचन-काय की चंचलता।

इस प्रकार संक्षेप में यही कर्म सिद्धान्त है, कर्म सिद्धान्त द्वारा जीव को अपने दुख का कारण स्वयं उसे ही बताया गया है यदि वह पुरुषार्थ करे तो कर्म परम्परा को नष्ट कर पूर्ण सिद्धावस्था को प्राप्त कर, अनन्त शक्ति सम्पन्न परमात्म-पद को प्राप्त कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गृहस्थ के मूल चिन्ह

जैन शास्त्रों में गृहस्थ की पहिचान के कुछ उपाय बताये हैं जो गृहस्थ के मूल चिह्न माने गये हैं इन्हें जैन गृहस्थ को पालन करना ही पड़ता है तभी वह जैन कहलाने का अधिकारी है। ये चिह्न हैं [१] जल छानना, [२] रात्रि भोजन त्याग और [३] देव दर्शन–ये तीन चिह्न ही ऐसे हैं जिनके कारण हम जैन–जैनेतर का भेद कर सकते हैं। ये क्रियायें जैन धर्म की जड़ हैं प्रत्येक जैन गृहस्थ को इन तीनों चिह्नों को सावधानी से पालना चाहिये। इनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रचार है—

[१] जल छानना—जैन शास्त्रों में जल छान कर पीना एक आवश्यक कार्य बताया है, आज वैज्ञानिक युग में तो पानी छानना अत्यन्त आवश्यक बताया है। क्योंकि वैज्ञानिकों ने खोजों द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि पानी में इतने छोटे–छोटे कीटाणु रहते हैं, जो हमें आँख से तो नहीं दिखते परन्तु वे होते बहुत खतरनाक हैं। पानी के विषैले कीटाणु पेट में जाकर संक्रामक रोग पैदा कर देते हैं। अतः पानी को कपड़े से छान कर हमेशा उपयोग में लाने का उपदेश जैन शास्त्रों में दिया है। यह उपदेश स्वास्थ की दृष्टि से भी उचित है क्योंकि पानी में जो गन्दापन होता है वह छानने से निकल जाता है और पीने के लिये साफ पानी मिल जाता है।

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि जल की एक बूंद में ६४५० जीव होते हैं। ये जीव मनुष्यों को घातक सिद्ध होते हैं। इस दृष्टि से भी मनुष्य को जल छान कर पीना चाहिये। जैन–दर्शन में जल एक इन्द्रिय जीव है अतः उसे जीव मानकर सावधानी पूर्वक मोटे कपड़े से छानकर पीने या अन्य किसी भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपयोग में लाना चाहिए। पानी छानने के बाद कपड़े को उलट कर उसकी जीवाणी पानी में डाल देनी चाहिए, इससे अहिंसा व्रत का पालन होता है। अतः प्रत्येक जैन गृहस्थ का यह आवश्यक कार्य है कि वह जल छानकर ही पीये, इसी से ही जैन गृहस्थ होने का भान होता है।

मनुस्मृति में भी जल छान कर ही पीने का उपदेश दिया गया है–

'दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।'

—पाँव देखकर रखे और जल वस्त्र से छान कर पिये।

[२] रात्रि–भोजन त्याग—रात्रि में सभी प्रकार के भोजनों का त्याग करना जैन गृहस्थ का दूसरा चिह्न है रात्रि में भोजन करने से तमोगुण की वृद्धि होती है। अहिंसा व्रती को रात्रि में भोजन त्याग इसलिए भी आवश्यक बताया है कि रात्रि में अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवों का संचार होने लगता है दिन में तो ये जीव जन्तु सूर्य प्रकाश को सहन न करने के कारण अन्धेरे स्थानों में छिपे रहते हैं पर रात्रि में ये जीव सञ्चरण शील हो जाते हैं और भोजन में गिरते हैं।

कुछ लोग दलील देने लगते हैं कि विद्युत् आदि के प्रकाश में भोजन पकाने या भोजन करने में क्या हानि है ? पर उनका यह तर्क निरर्थक है, कारण समाचार पत्रों में प्रायः समाचार निकलते रहते हैं कि कहीं दूध में छिपकली गिर गयी कहीं मेंढ़क आदि। देखा जाता है कि बिजली आदि के प्रकाश में तो ये जीव और अधिक आते हैं। तेज प्रकाश में कीट पतंगों आदि के कारण, तथा उन्हें भोजन बनाने के लिये आने वाली छिपकलियों आदि के कारण बैठना तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूभर हो जाता है। दूसरे यह प्रकाश भी सर्व सुलभ नहीं होता है, भारत के ८०% गृहों में अन्धेरे में खाना पकता है।

आरोग्य शास्त्र की दृष्टि से भी दिन में ही भोजन कर लेना स्वास्थवर्द्धक है, कारण भोजन को कम से कम ३ घण्टे बाद जब पेट का भोजन अर्द्ध पक्वावस्था में पहुंच जाय तब शयन करना चाहिए अन्यथा भोजन परिपाक ठीक तरह नहीं होता और निद्रा भी गाढ़ी और सुखद नहीं आती।

रात्रि में भोजन करके तुरन्त शयन करने से कामोत्तेजन भी होता है और ब्रह्मचर्य में दूषण लगता है। शरीर स्वास्थ्य के साथ मनः स्वास्थ्य पर गम्भीर असर पड़ता है और मानसिक हिंसा होती है।

रात्रि भोजन की आदत से गृहलक्ष्मियों को तो इतना अधिक परेशान होना पड़ता है कि वे वेचारी कभी-कभी तो पूरी रात नहीं सो पाती और उनके शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ता है। यों ही रात्रि भोजन की प्रवृत्ति से जीवन अनियमित, अनियंत्रित और स्वच्छन्द हो जाता है। प्राकृतिक दृष्टि से रात्रि का समय आत्मालोचन और विश्राम के लिए है अतएव भोजन क्रिया में जो कि समस्त लौकिक क्रियाओं का केन्द्र विन्दु है प्रवृत्त होना ठीक नहीं।

प्रकाश में लिया गया भोजन सात्विक होता है उसमें मिठास और आनन्द की वृद्धि भी अधिक होती है। स्नान-यज्ञ-पूजादि माङ्गलिक कार्य दिन में ही होते हैं फिर भोजन जैसा कार्य जो कि हमारी आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक शक्तियों का प्रमुख तम आधार है रात्रि में क्यों किया जाय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतएव जीवन में अहिंसा का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को रात्रि भोजन कभी नहीं करना चाहिए। रात्रि भोजन त्याग से अहिंसा धर्म की रक्षा होती है, विषयासक्ति घटती है, इन्द्रिय विजय होता है, जीवन नियमित बनता है, गृहकार्य में बहुतसी झँझटे बचती हैं, स्वास्थ्य रक्षा में सहायता मिलती है और सात्विक भावनाओं की वृद्धि होती है।

[३] जिन दर्शन—श्रावक का तीसरा चिह्न नित्य प्रति जिनेन्द्र प्रभु का दर्शन है। वीतराग प्रभु के प्रतिबिम्ब के दर्शन से प्रभु के अनन्त गुणों का स्मरण हो उठता है और उसके माध्यम से अपनी आत्म विभूतियों का भी अनुभव होता है। अतएव जैन आगमों में जिनेन्द्र दर्शन को सम्यक् दर्शन का प्रमुख कारण बतलाया है—

देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन धर्म दयाजुत सारो।
यह मान समकित को कारण अष्ट अंग जुत धारो॥

प्रत्येक श्रावक को नित्य प्रति प्रातःकाल दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर पवित्र जल से स्नान कर पवित्र वस्त्र पहिनकर अत्यन्त पवित्र और भक्ति मय भावों के साथ जिनेन्द्र दर्शन के लिए जाना चाहिए। और भक्ति पूर्वक प्रभु-चरणों में नमस्कार कर प्रभु-दर्शन से अपने जीवन को धन्य हुआ मानना चाहिए।

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य देव ! त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक,प्रतिभासते मे संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम्॥

—हे भगवन् तुम्हारे पावन चरण-कमलों के दर्शन-से मेरे दोनों नेत्र सफल हो गये, हे त्रैलोक्य-तिलक भगवन्, आज तुम्हारे मंगलमय दर्शन से मुझे यह अपार संसार चल्लू भर जल के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुतरणीय हो गया।

प्रातःकाल गृहकार्यारम्भ के पहले और सायंकाल गृह-कार्यों की समाप्ति पर दैनिक पापालोचन के रूप में नित्य प्रति प्रभुदर्शन करना गृहस्थ का परम कर्तव्य है इससे वह आत्मिक शान्ति को प्राप्त करता है। आज से कुछ समय पहले जब रेल मोटरों की व्यवस्था नहीं थी और लोग बैल गाड़ियों से व्यापार कार्य करते थे तब रास्ते से ८-८ मील दूर होने पर भी बिना जिनदर्शन किये जल मात्र भी ग्रहण नहीं करते थे और पैदल ही दर्शन को जाते थे।

आज के जीवन में आलस्य और प्रमाद अधिक बढ़ रहा है श्रद्धा नाम की वस्तु हमारे हृदयों से घट रही है अतएव गृहस्थ अपने इन संस्कारी कार्यों को भूलते जा रहे हैं इसका असर उनके जीवन पर तो पड़ता ही है परम्परा पर भी पड़ता है और धार्मिक सदाचार का वातावरण लुप्त होता जाता है। अतएव प्रत्येक गृहस्थ का कम से कम इन तीन मूल चिह्नों को तो पकड़े ही रहना चाहिए। जो जल छानकर नहीं पीता, नित्य जिनदर्शन नहीं करता और रात्रि-भोजन में जिसकी प्रवृत्ति है उसे तो नाम मात्र का भी जैन कैसे कहा जा सकता है।

-:❀❀:-

धन्य हैं, जो न्याय के लिए दुख सहते हैं, स्वर्ग का राज्य उनका ही है।

—महात्मा ईशा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावक व्रत

[संवाद]

ब्रह्मचारी जी की पहली बैठक—

शिखर, महेश, कमला आदि का आगमन। ब्रह्मचारी जी मध्याह्न सामायिक से निवृत्त होकर बैठे हैं। अभिवादन क्रिया के अनन्तर सब चुपचाप बैठ जाते हैं।

शिखर—महाराज, गृहस्थों के दैनिक कर्तव्य-मूल चिह्नों को हमने अच्छी तरह जान लिया उनसे संयमित जीवन की शिक्षा मिलती है अब हमें गृहस्थों के पालने योग्य विशेष नियमों [व्रतों] के विषय में बतलाइए।

ब्रह्मचारी जी—प्रश्न तुमने उचित पूछा, तो सुनो—'व्रत' का तात्पर्य है—अच्छे कामों को करना और बुरे कामों को छोड़ना। श्री नेमिचन्द्र स्वामी ने द्रव्य संग्रह में बताया है—'असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं'—अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति को चारित्र जानो। यहां चारित्र से मतलब व्रत ही है। 'व्रत' शब्द में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का संग्रह है। पर प्रवृत्ति शुभ कार्यों की ओर हो और निवृत्ति अशुभ कार्यों से। ज्यों-ज्यों शुभ कार्यों में प्रवृत्ति होगी त्यों-त्यों अशुभ कार्यों से निवृत्ति अपने आप होने लगेगी। यह संसार दुखमय है, पर यदि कोई अशुभ—हिंसा, असत्याचरण-आदि कार्यों के द्वारा उन दुखों को बढ़ावे तो 'गुरबेल कड़वी और नीम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर चढ़ी' वाली कहावत चरितार्थ होगी। अतएव सद्गुरु संसार के भयानक दुखों से कुछ विश्राम पाने के लिए शुभाचरण रूप व्रतों के पालन का उपदेश देते हैं. वैसे उनकी दृष्टि में शुभ और अशुभ प्रवृत्तियां दोनों बराबर हैं–हेय हैं। पर गृहस्थ के लिए अशुभ आचरण को छोड़कर शुभाचरण रूप ही पालन करना होगा।

सच्चा गृहस्थ न्याय से धन कमाता है। गुणी जनों को देखकर प्रमुदित होता है। संयत वाणी का शिष्ट प्रयोग करता है। गृहस्थों के योग्य-धर्म-अर्थ-काम रूप पुरुषार्थों का विरोध रहित पालन करता है। वह शालीन होता है। उसके आचार और व्यवहार, आहार और विहार नियमित समाज-सम्मत होते हैं। सदा सज्जनों की संगति करता है। सद्गृहस्थ शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, पाप-भीरु और जितेन्द्रिय होना चाहिए।

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गी त्रिवर्गं भजन् ।,
नन्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणीस्थानालयो ह्रीमयः ॥
युक्ताहारविहार आर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी, ।
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागारधर्मं चरेत् ॥

कमला—ब्रह्मचारी जी, पहले यह बतलाइए-'श्रावक' कौन कहलाता है ?

ब्रह्मचारी जी—हां कमला हमने ऊपर जो गृहस्थ के विषय में बतलाया है वैसा ही गृहस्थ 'श्रावक' कहलाता है। तभी तो साधारण लोग श्रावक शब्द का श्रा–श्रद्धावान्, व–विनय या विवेकवान्, क–क्रियावान् ऐसा सीधा सरल पर तात्विक अर्थ लगा लेते हैं। वास्तव में एक श्रावक में सत्श्रद्धा, सद्विवेक व सत् क्रिया होनी चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महेश—महाराज, आपने 'श्रावक' शब्द का अर्थ तो बड़ा मार्मिक बतलाया। अब बतलाइए श्रावक में कम से कम कौन कौन विशेषताएँ होनी चाहिए।

ब्रह्मचारी जी—भाइयो, यह तो तुम जान ही गये हो कि धर्म की जड़ समता अर्थात् अहिंसा में है। अतएव श्रावक में कम से कम अहिंसा की भावना तो होनी ही चाहिए।

अहिंसा की भावना के लिए उसे मूल गुणों—श्रावक धर्म के आधार भूत गुणों—को धारण करना चाहिए वे व्रत आठ हैं।

१. मद्य त्याग—शरीर स्वास्थ्य तथा आत्म-गुणों को नष्ट करने वाली महान् हिंसा से परिपूर्ण शराब आदि नशीली वस्तुओं का छोड़ना।

२. मांस त्याग—चलते-फिरते प्राणियों के शरीर से उन्हें मारकर निष्पन्न होने वाला मांस, भक्षण के योग्य क्या छूने अथवा देखने के योग्य भी नहीं है। जिस प्राणी को मारकर मांस निकाला गया है उसका वध तो उसमें हुआ ही है मांस में प्रतिक्षण अनेकानेक जीवाणु उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। जिसका खाना क्या देखना तक दयाधर्म का विघातक है, ऐसे मांस के भक्षण का परित्याग करना।

३. मधु त्याग—शहद या मधु भी अनेक मधु-मक्खियों का वमन है उस शहद में ही उनके बच्चे जन्म लेते रहते हैं। उन्हें निचोड़ कर ही शहद तैयार किया जाता है। अतएव हिंसा से निष्पन्न शहद-मधु-का त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

इनके अतिरिक्त जो बिल्कुल नव दीक्षित श्रावक हैं उन्हें-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़, ऊमर, कठूमर, पीपल, पाकर आदि अनन्त चलते फिरते जीवों से भरे हुए फलों का त्याग कर 'दया' की भावना रखनी चाहिए, साथ ही (१) सदा पानी छानकर पीना, (२) रात्रि भोजन का त्याग करना और प्रतिदिन देव-दर्शन करना भी 'श्रावक' के मूल नियमों में सम्मिलित हैं। बीमारी आदि की हालत में परोक्ष रूप से भी अपने आराध्य देव के गुणों का चिन्तवन किया जा सकता है। क्योंकि भावनाओं की पवित्रता सर्वत्र मुख्य है।

शिखर—ब्रह्मचारी जी ये तो श्रावक के 'मूल गुण' हो गये क्या इतना ही पर्याप्त है या और भी उसके लिए कर्तव्य हैं।

ब्रह्मचारी जी—नहीं भाई, 'मूल गुण' या 'मूल व्रत' कहने से ही यह बात फलित होती है कि ये तो श्रावकत्व की प्रारम्भिक सीढ़ियाँ हैं। जिन्होंने ने 'श्रावक' कुल में ही जन्म लिया है ऐसे विवेकी गृहस्थ को तो बारह प्रकार के व्रत बतलाये गये हैं। जैसा कि शास्त्रों में बताया गया है—

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणम्।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातम् ॥

—गृहस्थों का चारित्र अणुव्रत, गुणव्रत एवं शिक्षाव्रत के भेद से तीन प्रकार का है और वह तीन प्रकार का भी पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों के भेद से कुल-बारह प्रकार का है।

महेश - ब्रह्मचारी जी, अणुव्रतों से क्या तात्पर्य हैं और वे क्या हैं? अच्छी तरह बताइए।

ब्रह्मचारी जी—सब सुनो, अणु का मतलब है सूक्ष्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या अल्प । कोई 'गृहस्थी' में रहकर व्रतों को पूरी तरह से पालन करना भी चाहे तो नहीं कर पाता । गृहस्थ को समाज में रहना है, उसे आजीविका आदि भी कमानी है ऐसी हालत में उसे व्यावहारिक रीति से ही चलना होगा अतएव उसके लिए कुछ हद तक छूट दी गई है इस छूट से युक्त व्रतों का पालन ही 'अणुव्रत' है । हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह (आशक्ति पूर्वक सञ्चय) इन पाँच पापों का त्याग श्रावक के लिए आंशिक रूप से ही बताया है—

प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छेभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥

—हिंसा, अनृत—झूठ आदि स्थूल पापों से विरक्त होना ही 'अणुव्रत' है ।

ये अणुव्रत पांच पापों के आंशिक त्यागसे—

१—अहिंसाणुव्रत, २—सत्याणुव्रत, ३—अचौर्याणुव्रत, ४—ब्रह्मचर्याणुव्रत एवं ५—परिग्रह परिमाण अणुव्रत—पांच प्रकार के हैं ।

अहिंसाणुव्रत—मन से किसी का बुरा नहीं विचारना, वचन से किसी को बुरा न कहना, शरीर या क्रिया से किसी का बुरा न करना । तथा स्वयं किसी का बुरा न करना, दूसरों से किसी का बुरा न करवाना, किसी के अपकार में लगे हुए का समर्थन नहीं करना । त्रस—चलते फिरते—जीवों के घात से सदा बचना, स्थावर जीवों के घात से भी यथा संभव बचना, निरन्तर निरालस्य और दया रूप परिणाम रखना अहिंसाणुव्रत है । अहिंसक प्राणी प्रत्येक आत्मा में परमात्मा के दर्शन करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह सदा समता की सरस धारा से स्नात रहता है। क्रोध-मोह-लोभ-राग-द्वेष रूप आत्मघाती भावों से सदा दूर रहने में सप्रयत्न रहता है। वह सारे संसार को अपना मित्र मानता है। पीड़ित को देखकर कातर हो उठता है।

उसकी मानवता की शीतल किरणें प्राणी मात्र पर पड़ती हैं अतएव वह अपने पालतू या किसी पशु के भी वध से सतत दूर रहता है। पशुओं को यंत्रणाकारी बन्धनों में नहीं बाँधता, उनके नाक, कान, मुष्क आदि अंगों का छेदन नहीं करता-कराता। उन्हें समय पर उचित आहार-पानी आदि देना नहीं भूलता, शक्ति से अधिक बोझा भी उनसे नहीं ढुलाता। उन पर सदा ही उसकी ममता और प्यार कुटुम्ब के लोगों की भाँति रहता है।

सत्याणुव्रत— सदा ही हित-मित-प्रिय शिष्ट और यथार्थ वचनों का प्रयोग करना-कराना। अहिंसा और न्याय की रक्षा के लिए कठोर सत्य का भी समय को विचार कर प्रयोग नहीं करना सत्याणुव्रत है। सत्य व्रत की रक्षा करने वाले श्रावक में भय, आशा, पक्षपात और लोभ जैसी अवगुणी प्रवृत्तियां नहीं होनी चाहिए अन्यथा वह सत्य वचनों के व्यवहार में अपने को असमर्थ पायगा।

सत्याणुव्रती—किसी की निन्दा नहीं करता, किसी की गुप्त—अप्रकाश्य बातों को प्रकट नहीं करता, किसी की चापलूसी या चुगली नहीं करता, मिथ्या साक्ष्य का प्रयोग नहीं करता, किसी भोले, अज्ञान अथवा बालक से झूठे लेख लिखाकर उन्हें ठगने की प्रवृत्ति नहीं करता, किसी के न्यास-धरोहर का हरण नहीं करता।

अचौर्याणुव्रत—इच्छापूर्वक, आसक्ति भाव से किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की रखी हुई, गिरी हुई, भूली हुई, बिना दी हुई वस्तु को नहीं लेना, व लेकर दूसरों तक को न देना सो अचौर्य अणुव्रत है। अचौर्यव्रती किसी का दिल दुखाने वाली प्रवृत्तियों में कैसे सम्मिलित हो सकता है ? वह तो 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' व्यवहार करता है और दूसरे की वस्तुओं को वमन की भाँति अस्पृश्य समझता है।

ऐसा व्रती नैतिकता तथा राष्ट्र समाज या शासन के विरोधी चोरी के उपाय बतलाना, चोरों के द्वारा चुराये गये माल को कम मूल्य पर लेना, शासकीय निर्देशों के द्वारा प्रतिबन्धित माल को इधर उधर ले जाना, वस्तुओं में मिलावट कर मुनाफा कमाना, दूसरों को ठगने के लिए कम बढ़ नापतौल के साधनों को रखना, घूस लेना, देना, कृत्रिम रूप से अभाव पैदा करना आदि कार्य कैसे सकता है ? वह उचित और अनुचित का सदा ही विवेक रखेगा।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—सच्चा श्रावक सदा ही शिष्ट व्यवहार करता है वह विवेकी और लज्जालु होता है—उसकी मनः शक्ति स्थिर और आत्म बल ऊँचा होता है। उसका मन इतना पवित्र होता है कि संसार की समस्त नारियाँ उसकी दृष्टि में माता, बहिन, अथवा पुत्री के समान होती हैं। वह अपनी परिणीता पत्नी को भी केवल कामपूर्ति का साधन नहीं मानता वह उसके व्यक्तित्व का आदर करता हुआ भोजन के समय माता के समान, सम्भाषण में सखी के समान, आपत्काल में मित्र के समान व्यवहार करता है। वह लोक मर्यादा व शिष्टता का सदा ध्यान रखता है।

ऐसा व्यक्ति आसक्ति को बढ़ाने वाले कार्यों से जैसे-दूसरों के विवाह कराना, अनंगक्रीड़ा, अशिष्ट और अभद्र वचनों का बोलना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभद्र संकेतों का प्रयोग, अभद्र और दुःशील महिलाओं से व्यवहार आदि कार्य नहीं करता। वह आशक्ति भाव से किसी के मनोहर अंगोंके निरोक्षण,पूर्व भुक्त भोगों का स्मरण,आशक्तिवर्धक कामोत्तेजक रसों का आस्वादन, गरिष्ठ भोजन आदि को छोड़ वस्त्राभूषण आदि से भद्र जनों के अनुचित शरीर शोभा भी नहीं बढ़ाता।

उसके मन-वचन और शरीर की समस्त चेष्टायें भद्र-जनोचित शिष्ट सभ्य और शालीनता मय होती हैं।

परिग्रह परिमाण अणुव्रत--आसक्ति भाव को घटाने के लिए धन-अनाज, खेत-घर, दासी-दास, सोना चांदी-सज्जा-सामान व पशु आदिक का प्रमाण लेकर उसके बाहर फिर अपनी इच्छाओं को नहीं दौड़ाना। सादा जीवन और उच्च विचार वाले सिद्धान्त को जीवन में उतारना 'परिग्रह परिणाम' अणुव्रत है। आत्मा के स्वभाव का निरीक्षक व्यक्ति जब शरीर को भी अपना नहीं मानता तब वह इन बाह्य वस्तुओं को कैसे अपना सकता है। वह तो जल में कमल की भाँति इससे अलिप्त होकर ही अपने सामाजिक-गार्हस्थिक जीवन का सञ्चालन करता है। लोभ वृत्ति उसे छू भी नहीं पाती।

ऐसा महान् व्यक्ति न तो अधिक शौक करता है, न वह अनावश्यक वस्तुओं का सञ्चय करता है, न दूसरों के वैभव को देखकर चकित होता है, न उससे लुभाता है, न अत्याशक्ति से वह व्यापारिक कार्यों में ही एकांगी जीवन बिताता है। वह नियमानुसार गृहस्थोचित षडावश्यक कार्यों को सम्पन्न करता है। वह अपने को हर परिस्थिति में सदा प्रसन्न बनाये रखता है। वह सोचता है कि इन इच्छाओं की पूर्ति कभी हो नहीं सकती—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम् ।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥

—प्रत्येक प्राणी का आशा–इच्छा–गर्त इतना बड़ा है कि उसमें संसार की समस्त वस्तुएँ अणु तुल्य हैं, लोक के समस्त भोग्य पदार्थों से एक व्यक्ति की भी इच्छा पूर्ति नहीं हो सकती फिर सबके लिए भोग्य पदार्थ इच्छानुसार कहां पूज सकते हैं अतएव सुखी बनने का एक ही उपाय है—इन वासनाओं से दूर ही रहा जाय।

अतएव वह अपने आत्म–स्वरूप में ही मग्न रहता है—

शिखर—महाराज, आपने अणुव्रतों के स्वरूप पर तो अच्छी तरह प्रकाश डाला। मैं भी इन व्रतों की साधना में तत्पर होऊंगा कृपाकर इन व्रतों की महिमा भी बतलाइए।

ब्रह्मचारी जी—सुनो—

पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणा फलन्ति सुरलोकम् ।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥

—दोष रहित पालन किये गये ये पञ्च अणुव्रत जो कि नागरिक धर्म हैं, इसलोक में तो सुख देते ही हैं परलोक में भी इनसे देवत्व प्राप्त होता है जहां अवधिज्ञान, अणिमा-महिमादि अष्ट ऋद्धियां और दिव्य शरीर प्राप्त होता है।

महेश—महाराज, अब 'गुणव्रत' क्या हैं यह भी तो समझाइए।

ब्रह्मचारी जी—क्यों नहीं मेरा काम ही क्या है। समाज के त्यागी–व्रतियों की यही तो जिम्मेदारी है कि वे सदाचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के मार्ग पर स्वयं चलें और समाज को भी उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें।

दूसरा कार्य यह कि आचार्यों द्वारा लिखे गये आगम ग्रन्थों का गहन अध्ययन कर तत्व को समझें और उन तत्वों से साधारण जनता को लाभ पहुंचाने के लिए आगमों का निचोड़ लोक भाषा में संकलित कर अपने उपयोग को स्थिर रखें।

महेश - पर महाराज, देखा तो उल्टा ही जाता है कुछ ही त्यागी-व्रती ऐसे होंगे, बहुत तो लोकेषणा में लगे हैं—कोई यश चाहता है, कोई पैसा इकट्ठा करते हैं, सम्यग्ज्ञान की तरफ बहुतों का बहुत कम लक्ष्य है।

ब्रह्मचारी जी—महेश, तुम हो तो सच्चे पारखी, पर किया क्या जाय, समाज शासन तो है नहीं कि सब पर नियंत्रण रखा जा सके, जिनके जैसे उद्देश्य होंगे तदनुसार ही उनका परिणाम मिलेगा।

अच्छा अब मूल बात को लें—तो 'गुणव्रत' का मतलब है कि जिनसे अहिंसादिक व्रतों में विकास हो, वृद्धि हो ऐसे व्रत। जिस प्रकार २ को २ से गुणित करने पर फल ४ होता है वैसे ही इन गुणव्रतों के पालन से अहिंसादिक व्रतों में कई गुना विकास होता है अतएव ये व्रत 'गुणव्रत' कहलाते हैं जैसा कि स्वामी समन्त भद्र ने कहा है—

'अनुबृंहणाद्गुणाना—माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः'

ये गुणव्रत तीन होते हैं—१ दिग्व्रत, २ देशव्रत, ३ अनर्थ दण्ड व्रत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्व्रत जीवन भर जो स्थिर रह सकें ऐसे चिह्नों के द्वारा दशों दिशाओं का प्रमाण लेकर जीवन भरके लिए उनके बाहर सब प्रकार की आसक्ति घटा कर बाहर समस्त व्यापारों से अलग होकर पाप प्रवृत्ति को घटाना दिग्व्रत है।

देशव्रत – दिग्व्रत की मर्यादा के भीतर भी कुछ समय के लिये नियम करके उसके बाहर समस्त पापों से दूर रहना। क्षेत्र सम्बन्धी आशक्ति को घटाना देशव्रत है। जैसे–मैं अमुक दिनों तक इन–इन दिशाओं में इस क्षेत्र से बाहर किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखूंगा–आदि।

अनर्थ दण्ड व्रत – जिन पापकारी क्रियाओं से हमको ऐहिक या पारलौकिक कुछ भी लाभ नहीं होना है केवल हिंसादिक पापों की ही वृद्धि जिनसे हो, ऐसी क्रियाएँ अनर्थदण्ड कहलाती हैं इन क्रियाओं को छोड़ना अनर्थदण्ड व्रत है।

ये अनर्थ दण्ड व्यर्थ की पाप–क्रियायें १ पापोपदेश २ हिंसादान ३ अपध्यान ४ दुःश्रुति एवं ५ प्रमादचर्या–पांच प्रकार के हैं—

(क) पापोपदेश पापों का उपदेश देना, हिंसा कारक तिर्यञ्चों के व्यापार की सम्मति देना, क्लेश युक्त व्यापार करने का उपदेश देना, आदि पापोपदेश कहलाते हैं।

(ख) हिंसा दान— हिंसा के कारणभूत–फरसा,कृपाण कुदाल अग्नि; हथियार, सींग, सांकल आदि का हिंसा के निमित्त दानदेना हिंसादान अनर्थदण्ड है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) अपध्यान—किसी का घर जल जाय, अमुक बीमार हो जाय, अमुक का पुत्र मर जाय, उनका धन नष्ट हो जावे आदि खोटा चिन्तवन करना 'अपध्यान' अनर्थ दण्ड है।

(घ) दुःश्रुति—स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली, हिंसा और द्वेष फैलाने में सहायक कथाओं को, प्राणी में घृणा पैदा करने वाले साहित्य, भोजन सम्बन्धी-बातों को पढ़ना सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्ड है।

(ङ) प्रमादचर्या—प्रमाद या आलस्य के वशीभूत होकर किसी कर्त्तव्य कार्य में उत्साह नहीं रखना, व्यर्थ में पृथ्वी खोदना, जल बिखेरना, अग्नि जलाना, वृक्ष उपाड़ना आदि क्रियाओं को आत्म साधना में सावधान प्राणी व्यर्थ के अनर्थ दण्ड-पापों को समझकर त्यागने में उत्साहवान् होता है।

इन्हीं को छहढाला में इस प्रकार सकंलित किया गया है।

काहू की धन-हानि किसी जय हार न चिन्तै।
देय न सो उपदेश होय अघ वनिज कृषी तै॥
कर प्रमाद जल-वृक्ष भूमि-पावक न संवारै।
असि-धनु हल हिंसोपकरण नहिं दे जस लाघै॥
राग-द्वेष करतार कथा कबहूँ न सुनीजे।
औरहु अनरथ दण्ड हेतु अघ तिन्हें न कीजे॥

ऐसी अनर्थकारी पापवृत्तियों को विवेकी व्यक्ति कभी नहीं करता। इन क्रियाओं के त्याग को ही 'अनर्थ दण्ड व्रत' कहते हैं।

शिखर—महाराज, आपके द्वारा उपदिष्ट इन 'व्रतों' को सुनकर मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि आचार्यों ने व्यक्ति की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्नति के लिये क्या ही पवित्र मार्ग खोज निकाला है जय हो भगवान् महावीर स्वामी के शासन की जिसमें हृदय की पवित्रता हेतु इतना सूक्ष्म विवेचन किया है। इस पवित्र मार्ग में तो सर्वत्र समता, मैत्री और अहिंसा की गंगा कलकल बहती दृष्टिगत होती है।

कमला - महाराज, अभी 'शिक्षाव्रत' तो समझाये ही नहीं गये कृपया उन्हें भी समझाइए।

ब्रह्मचारी जी—प्राणी मात्र का चरम लक्ष्य पूर्ण आनन्द प्राप्त करना है अर्थात् मोक्ष पुरुषार्थ को सिद्ध करना है। मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि पूर्ण स्वावलम्बी साधक श्रमण ही कर सकता है। आप लोग और हम लोग ठहरे गृहस्थ। आखिर लक्ष्य तो हमारा भी वही है-तो जिस प्रकार एक सैनिक को युद्ध-मोर्चे पर जाने से पहले सैनिक शिक्षा का अभ्यास करना आवश्यक है उसी प्रकार कर्म-शत्रुओं से लड़ने के लिये साधु अवस्था रूप मोर्चे पर जाने से पहले उसका अभ्यास करना जरूरी है। और इस अभ्यास को ही अर्थात् महाव्रतों के पालन अथवा तपश्चरण के पूर्व अभ्यास को 'शिक्षा व्रत' कहते हैं। यह अभ्यास क्रम--शिक्षाव्रत--चार भागों में विभक्त है।

१ सामायिक २ प्रोषधोपवास ३ भोगोपभोग परिमाण तथा ४ अतिथि संविभाग।

सामायिक—समय आत्मा का नाम है प्रत्येक श्रावक का कर्त्तव्य है कि वह प्रतिदिन थोड़ा न थोड़ा समय 'समय-आत्मा-के चिन्तन में दे, इसके लिये प्रातः ब्राह्म मुहूर्त, दोपहर एवं संध्या का समय उपयुक्त है, अतएव त्रिकाल आत्म चिन्तन करना ही सामायिक है। सामायिक में थोड़े समय के लिये समस्त प्रकार के राग-द्वेष आदि विभावों को तथा बाह्य रूप में मन-वचन काय की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवृत्ति को रोकने से पांच पापों को त्याग दिया जाता है । और समता मय परिणामों से संसार के समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री भाव की कामना की जाती है । साधुओं का अधिकतर समय आत्म-ध्यान में व्यतीत होता है। सामायिक के द्वारा आत्म-ध्यान तथा मन-वचन-क्रिया की प्रवृत्ति को रोकने का अभ्यास श्रावक गण करते हैं । सामायिक में-प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समता भावना, स्तवन,वन्दना और कायोत्सर्ग-ये छह क्रियाएँ की जाती हैं।

प्रतिक्रमण—अपने मन-वचन-शरीर से होने वाले दोषों की स्वीकृत

प्रत्याख्यान—उन दोषों को त्यागने का संकल्प ।

समता भावना—संसार के प्रत्येक प्राणी के प्रति मैत्री कामना

स्तवन—आत्म--स्वरूप के परिचायक तीर्थंकरों के उपकारों-का स्मरण ।

वन्दना—पञ्च परम गुरुओं में गुणानुराग एव नमस्कार ।

कायोत्सर्ग- शरीरादिक आत्मातिरिक्त वस्तुओं के प्रति ममत्व त्याग ।

आत्म चिन्तन रत साधक अपने आत्मा को ही अपना आधार मानता है—

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी विधानतो नो फलको विनिर्मितम्।
यतो निरास्ताक्ष कषायविद्विषः सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥

ध्यान करने के लिये किसी पाषाण शिला, कुशा या पृथ्वी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के आसन की आवश्यकता नहीं कारण विषय कषायों से रहित आत्मा ही आत्म-दृष्टियों के लिये शुभ आसन है।

अर्थात् आत्म चिन्तन द्वारा थोड़े समय के लिये आत्मानन्द का आस्वाद लेना ही सामायिक है। सामायिक में तत्वचिन्तन और बारह भावनाओं के चिन्तवन से संसार,शरीर और भोगों से प्रथक् प्रतीति करनी चाहिए।

कमला--महाराज, आपने सामायिक क्या है—यह तो बता दिया अब कृपाकर यह बतलाने का कष्ट करें कि सामायिक कैसे की जाती है ?

ब्रह्मचारी जी—सामायिक निश्चित समय पर-प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल एकान्त स्थान में जहां आत्मध्यान में किसी प्रकार की बाधा न पहुंचे करनी चाहिए। सर्वप्रथम पूर्व या उत्तर दिशा में कायोत्सर्ग मुद्रा-सीधे खड़े होकर हाथों को सीधे नीचे करके नासा दृष्टि लगाकर-नौ बार नमस्कार मंत्र का स्मरण करे तदनन्तर पञ्च परम गुरुओं को परोक्ष रूप से दण्डवत् नमस्कार करके मन-वचन-काय कृत पापों से शुद्धि के लिये तीन आवर्त देकर हरएक दिशा में यही क्रिया करे। यह क्रिया समाप्त होने पर पुनः उसी दिशा में पद्मासन माड़कर पञ्च नमस्कार मंत्र का १०८ बार जप करे इसके बाद प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, सामायिक, स्तवन-बन्दन और कायोत्सर्ग करे। यह क्रिया करके फिर आत्म-चिन्तन में रत हो जाये और अपनी इन्द्रियों तथा मन को भी बिल्कुल केन्द्रित करले यह क्रिया जितने समय हो सके करें तदन्तर वस्तुतत्व का सम्यग्विचार करने के लिये बारह भावनाओं का चिन्तन करें। पञ्च महा गुरुओं का स्मरण करके उसी क्रम से समस्त दिशाओं में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नौ वार नमस्कार का मंत्र त्रिआवर्त व दण्डवत् नमस्कार के साथ सामायिक क्रिया को पूरा करें।

सामायिक के समय श्रावक सब प्रकार के पापों और आरंभ परिग्रह से रहित होता हैं अतएव शास्त्रों में उतने समय तक के लिये उसे मुनि की संज्ञा दी गयी है। नियमित रूप से सावधानी पूर्वक त्रिकाल सामायिक के द्वारा हमें आत्म-दर्शन पाना अत्यन्त सरल हो जाता है।

अब प्रोषधोपवास के विषय में सुनो,

प्रोषधोपवास--मुनि अवस्था में कभी आहार मिलता कभी अन्तराय हो जाते हैं। मुनिराज कई दिन एवं कई प्रकार के उपवास करते हैं यदि 'उपवास' की शिक्षा पहले से न ली जाय तो साधु धर्म का निर्वाह कोई न कर सके अतः श्रावक को प्रोषधोवास शिक्षाव्रत बताया गया है—'पर्व चतुष्टय माहि पाप तज प्रोषध धरिये।'

प्रोषध का मतलब एकासन है और उपवास का मतलब निराहार रहना प्रोषधोपवास का मतलब है दो एकासनों के बीच एक उपवास महीने की दो अष्टमी और दो चतुर्दशियों में चार बार प्रोषधोपवास करना चाहिए अष्टमी के उपवास के लिए सप्तमी और नवमी को एकासन रखना। सप्तमी को एकासन के बाद ही २४ घन्टे को आहार जल आदि समस्त प्रकार के भोज्य-आस्वाद्य-पेय-लेह्य आहारों को छोड़ना और विषय कषायों को घटा कर धर्म ध्यान में ही समय बिताना चाहिए। क्योंकि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषाय-विषयाहारो, त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासस्तु विज्ञेयः, शेषं लङ्घनकं विदुः॥

कषाय और विषय को घटाने के लिये आहार का त्याग करना ही उपवास है, अन्यथा-कषायों की क्षीणता न होनें पर वह-लङ्घन मात्र है।

भोगोपभोग परिमाण—

विषय कषायों त आसक्ति को घटाने के लिए भोग्य और उपभोग्य वस्तुओं का परिमाण लेकर वाकी का त्याग करना भोगोप भोग परिमाण व्रत है।

आसक्ति को घटाना इसका परम उद्देश्य है।

अतिथि संविभाग—उत्तम, मध्यम व साधारण पात्रों को अनुकूल विधि, अनुकूल द्रव्य, अनुकूल भावनाओं के साथ आहार, औषधि, ज्ञान और अभय दान देना—अतिथि संविभाग व्रत है।

उत्तम पात्र—आरम्भ-परिग्रह से सर्वथा रहित आत्म-ज्ञान में लवलीन रहने वाले, मोक्ष साधक, साधु हैं।

मध्यम पात्र—श्रेणियों के अनुसार चारित्र में उत्तरोत्तर उत्कर्ष पैदा करने वाले श्रावक, मध्यम पात्र हैं।

साधारण पात्र—साधारण श्रावक, विद्यार्थी, लोकोपकारी व धर्म के अनुकूल वातावरण तैयार करने वाली संस्थायें साधारण पात्र हैं, इनके अतिरिक्त दीन-दुखी रोगी असहाय प्राणी भी साधारण पात्र हैं। इन्हें धर्म-प्रभावना, धर्मवात्सल्य, धर्म-स्थिरता की दृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से किसी लोक-यश व लोक-प्रभुत्व की कामना किये बिना, उपकार बुद्धि से प्रत्युपकार की भावना से रहित योग्य द्रव्य का दान देना भी अतिथि संविभाग व्रत है।

गृहस्थ के कर्तव्यों में दान का बड़ा महत्व है—पर न्याय की कमाई से जो लक्ष्मी पूर्व पुण्य से प्राप्त हुई है उसी का दान श्रेष्ठ है। दाता जब पात्र को अपने से बड़ा समझता है तभी वह दान के सच्चे उद्देश्य को प्राप्त करता है।

कितनी बढ़िया यह उक्ति है—

पानी बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥

दान से लक्ष्मी की शोभा है। इस लोक में यश और पर-लोक में उत्तम सुख सच्चे दाता को प्राप्त होते हैं। ये ही तीन गुण-व्रत और चार शिक्षाव्रत-सात शीलव्रत कहलाते हैं, क्योंकि ये आत्मा को अपने स्वभाव की ओर अग्रसर करते हैं।

महेश—महाराज, आज तो आपने श्रावक धर्म का स्वरूप ऐसी अच्छी तरह समझाया कि मेरे हृदय में पैठ गया यह श्रावक धर्म तो सच्चा नागरिक शास्त्र है। यदि कोई श्रावक इन धर्मों का उचित रीति से पालन करे तो राजदण्ड हट ही जावे। राज्य संस्था की जरूरत ही नहीं पड़े, पर दुर्भाग्य कि लोग कञ्चन को छोड़ काच को अपनाते हैं। क्यों महाराज, अब छुट्टी ? आपका हम लोगों ने बहुत समय लिया।

ब्रह्मचारी जी—सब सुनो, यह श्रावक धर्म तो मन्दिर ही है कलशे के बिना जिस प्रकार मन्दिर की शोभा नहीं इसी प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि जीवन भर अच्छी तरह व्रतों का पालन किया पर कायर की मौत मरे तो क्या लाभ। सच्चा जीवन वीर जीते है और सच्ची मौत भी वीर ही अपना पाते हैं।

सब लोग— हाँ महाराज, ठीक कहा—सच्ची मौत क्या है और वे वीर कौन हैं, जो इसे अपनाते हैं ?

ब्रह्मचारी जी—थोड़े और बैठो और सुनो, सच्ची मौत है—सल्लेखना।

सल्लेखना—कहावत है कि दिन भर का भूला संध्या को सुमार्ग पा जाय तो वह भटका नहीं कहलाता इसी प्रकार जिसने जीवन में पूरी तरह व्रतों का पालन नहीं भी कर पाया, पर मरण उसका वन गया तो वह सुगति पाता है।

मृत्यु की परवाह न करके आत्म-शोधन करने को ही सल्लेखना कहते हैं। झोपड़ी में अकस्मात् आग लग जाने पर अगर कोई विवेकी बुद्धिमान् है तो वह हाय तोबा मचाने के बदले अपना कीमती सामान उससे दूर करने में प्रयत्नशील होगा, ठीक उसी प्रकार आत्मज्ञ समदर्शी पुरुष निर्भीक होकर मृत्यु के समय अपने अमूल्य धर्म-धन की रक्षा में उत्साहवान् होता है। मौत को पास आया जान, वह विषय-कषायों से आसक्ति घटाने हेतु क्रम-क्रम से आहार आदि की प्रवृत्तियों से हट कर आत्म-ध्यान में उत्तरोत्तर उत्कर्ष करता है, इसी को सल्लेखना कहते हैं। सल्लेखना मौत के कुए में अपने को ढकेलना नहीं है, कारण सल्लेखना व्रत धारण करने वाले की यह इच्छा नहीं रहती कि इन व्याधि-जन्य दुखों से छूटने के लिए मौत मुझे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जल्दी बुला ले अपितु वह अत्यन्त साहसी निर्भीक की भांति मृत्यु के प्रति माध्यस्थ भाव धारण कर समबुद्धि से आत्म-साधना में रत रहता है। देखो सल्लेखना करने वाले के भीतर कैसा प्रकाश फूटता है—

मृत्युराज उपकारी जियको, तनसों तोहि छुड़ावे।
नातर या तन-बन्दी-गृह में, पर्यो पर्यो विललावे॥
पुद्गल के परमाणु मिलकें, पिण्ड रूप तन भासी।
या ही मूरत मैं अमूरती ज्ञान, ज्योति गुण खासी॥

रोग शोक आदिक जो वेदन, हैं सब पुद्गल लारे।
मैं तो चेतन व्याधि विना नित, हैं सो भाव हमारे॥
या तन सों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारन आन बन्यो है।
खान-पान दे याको पोष्यो, अब सम भाव ठन्यो है॥

'वह पने ज्ञानालोक में देखता है कि मृत्यु तो एक प्रकार से मेरी उपकारक है, जो शरीर रूप कारा से मुझे बन्धन-मुक्त करती है। अरे, मेरा इस तन से क्या नाता, यह कौन और मैं कौन? कहां पुद्गल-पिण्ड रूप अशुचि विनाशी मूर्त शरीर और कहां दर्शन-ज्ञान मय पवित्र अविनाशी अमूर्त मैं! अरे इस जन्म में ही तो मेरा इससे व्यावहारिक आधार-आधेय भाव है, वास्तव में तो मैं अपना स्वयं आधार हूँ।'

'कहां जड़स्वरूप यह शरीर, कहां चैतन्य रूप मैं! अभी तक खान-पीना देकर इसको मैं पोषता रहा और इससे काम लेता रहा पर मुझे अब यह परतंत्रता पसन्द नहीं कि इससे सहायता लूं, अतएव इसे पालूँ पोषूँ भी क्यों? अब तो मैं राग-द्वेष विहीन अपनी स्वभाव भूमि पर हूँ।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखो सल्लेखना को धारण करने वाले में ऐसा विवेक होना चाहिए। सच्चा साहसी, सच्चा वीर, सच्चा निर्भीक और सच्चा उद्योगी ही सल्लेखना या समाधि मरण धारण कर सकता है और जो श्रावक के इन व्रतों को जीवन में पालता है और अन्त में वीर-मृत्यु से मरता है वह—

वारह व्रत के अतीचार, पन पन नल गावे।
मरण समय सन्यास धार, तसु दोष नसावे॥
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावे।
तहँ ते चय नर-जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावे॥

शिखर—महाराज, कुछ त्यागी लोग आते हैं और कहने लगते हैं हम प्रतिमा धारी है, वे प्रतिमा–मूर्ति तो कोई नहीं लिये रहते।

ब्रह्मचारी जी—शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं, प्रतिमा किसी मूर्ति को भी कहते हैं, पर जब किसी त्यागी के सम्बन्ध में प्रतिमा धारी होने की बात सुनी जाती है, तब प्रतिमा का मतलब व्रतिक या नैष्ठिक श्रावक की चारित्र सम्बन्धी श्रेणियों से होता है। श्रावक असल में दो प्रकार के होते हैं—१ पाक्षिक श्रावक २ नैष्ठिक श्रावक।

पाक्षिक श्रावक तो साधारण अष्ट मूल गुणों के धारक जिन-वाणी की आज्ञा पालन करने वाले साधारण गृहस्थ कहलाते हैं पर नैष्ठिक श्रावक—वे हैं, जिन्हें गृहस्थी से कुछ फुरसत मिल चुकी है अतएव आत्मकल्याण की ओर अधिक झुक चुके हैं और ज्ञानाराधन के साथ साथ सम्यक् चारित्र की आराधना में निरंतर उत्साहवान् हैं। ऐसे श्रावकों की ग्यारह श्रेणियां होती हैं १–दर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा, ४ प्रोषधोपवास प्रतिमा, ५ सचित्त विरत प्रतिमा, ६ दिवा मैथुन विरत, ७ ब्रह्मचर्य, ८ आरम्भ त्याग, ९ परिग्रह त्याग, १० अनुमति त्याग और ११ उद्दिष्ट त्याग। प्रतिमा का अर्थ प्रतिज्ञापूर्वक लिया गया व्रत ही यहां है।

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा को पालने वाले दो प्रकार के होते हैं।

१ क्षुल्लक—जो मात्र एक छोटा चद्दर और दो लगोटियां रखते हैं।

२ ऐलक—जो मात्र दो लगोटियां ही रखते हैं।

प्रतिमा धारियों के कर्तव्यों को फिर कभी बतलायेंगे। समय हो चुका है।

सब के सब श्रोता—धन्य महाराज, आज तो हमारे हृदय के कपाट ही खुल गये। आपने जो मानव धर्म की व्यावहारिक व्याख्या की है, मानवता की इस पावन गंगा में जो नहायगा, अवश्य ही उसका जन्म-जन्म का ताप दूर होगा। महाराज, आपका समय अधिक लिया, आभारी हैं आपके। अच्छा चलते हैं, वन्दना महाराज!

[सब जाते हैं]

—:-o-:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थ और तीर्थंकर—

लोकालोक प्रकाशक जिनवर जो 'अर्हत्' पद के धारी।
धर्म-तीर्थ उद्योतन कर्त्ता, देवें बोधि स्वहित-कारी॥

लोकोत्तर पुण्य को धारण करने वाले विशिष्ट महान् पुरुष ही 'तीर्थंकर' होते हैं। जब संसार के प्राणी प्रबल मिथ्यातम से दूषित दृष्टि हो जाते हैं तब 'तीर्थंकर' धर्म-सूर्य के द्वारा उन्हें दृष्टि दान करते हैं। यह उन तीर्थकृत् परमात्माओं का ही उपकार है जिससे प्राणी निज-स्वरूप का अवबोध पाने लगता है।

भगवत् गीता ग्रन्थ में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम॥
परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म-संस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे-युगे॥

—हे भारत-अर्जुन, जब जब धर्म की ग्लानि-क्षीणता होने लगती है और अधर्म का नाश होने लगता है तब तब मैं अपने को साधुओं के परित्राण-रक्षण, दुष्टों के विनाश और धर्म की स्थापना के लिए अपने को रचता हूँ और समय-समय पर जन्म लेता हूँ।

जैन सिद्धान्त से यह मान्यता कतई मेल नहीं खाती। जैन दृष्टि में ईश्वर को कर्ता अथवा पुनः-पुनः जन्म लेने वाला नहीं माना गया है। जैन दृष्टि का परमात्मा वीतरागी और सर्वज्ञ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके किसी प्रकार की इच्छा शेष नहीं। वीत-द्वेषी होने के कारण भक्तों की भांति द्वेषियों से भी उसे कोई द्वेष नहीं, घृणा नहीं, विनाश करने की कटुभावना उसके कहां! न धर्म की स्थापना का राग ही उसे है। जो परम पद को प्राप्त हो चुका है, उसे धर्म की स्थापना की भी वासना नहीं।

हाँ तीर्थंकरों का उदय ऐसे समय में होता हैं। जब युग की पुकार होती है। प्रकृति के धर्म का निर्वाह स्वयं होता रहता है सो जब धरती पर मिथ्यात्वान्धकार व्याप्त हो जाता है, लोगों की असत् प्रवृत्तियां जव उग्र रूप धारण कर लेती है, सन्मार्ग जब लुप्त हो जाता है, तब कोई महान् पुण्यात्मा धर्म-तीर्थ का उदय करता हुआ प्रगट होता है। पद्म पुराण में---लिखा है—

आचाराणां विघातेन, कुदृष्टीनां च सम्पदा।
धर्मग्लानिं परिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः॥

—जब उत्तम आचरण-सम्यक् चरित्र रूप मार्ग का विघात होता है और कुदृष्टियों-मिथ्यादृष्टियों की सम्पदा बढ़ती है तब काम क्रोधादि के विजेताओं में श्रेष्ठ तीर्थंकर धर्म से च्युत होने वाले भव्य प्राणियों का उद्धार करते हैं।

तीर्थं क्या है ?—**'तीर्थमागमः तदाधारसंघश्च'** आगम अर्थात् द्वादशांग श्रुतज्ञान एवं उसका आधार भूत संघ-आचार्य, उपाध्याय, साधु-तथा धर्मोपासक श्रावकगण-धर्म के आश्रय भूत जिनविम्ब, जिन मन्दिर आदि सब तीर्थ हैं। संसार-रूप-सिन्धु से पार होने का अवलम्बन रूप धर्म ही तीर्थ है-

देशयामि समीचीनं, धर्मं कर्म-निवर्हणम्।
संसार दुखतः सत्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस प्रकार किसी नदी के 'घाट' का अवलम्बन लेकर उसे सुखपूर्वक पार किया जा सकता है उसी प्रकार धर्म रूपी तीर्थ [घाट] का अवलम्बन लेकर प्राणी दुख-सरिता को पार करते हैं। जिनवाणी के द्वारा आत्म ज्ञान की उपलब्धि करके संसार-सागर से तरा जा सकता है अतएव 'जिनवाणी' भी 'तीर्थ' ही है। तीर्थंकर भगवान् स्वयं तीर्थ हैं क्योंकि वे भी संसार-समुद्र से पार होने में अवलम्बन हैं--

दंसणणाणचरित्ते, णिज्जुता जिणवरा दु सव्वेपि।
तिहि कारणेहि जुत्ता, तम्हा ते भावदो तित्था ॥

'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन तीनों की एकता भवसागर की नौका है अतएव इनकी पूर्ण उपलब्धि करने वाले तीर्थंकर भगवान् स्वयं भाव रूप से तीर्थ हैं।

तीर्थंकर—धर्म-तीर्थ के प्रणेता श्रुतज्ञान के उपदेष्टा, जिनके मुख से जिन वाणी रूपी गंगा का उद्गम हुआ है ऐसे लोकोत्तर पुण्य के धारक, पञ्चमंगल उत्सवों से विशिष्ट, केवल ज्ञान के धारक, लोकालोक-प्रकाशक-सूर्य, सर्वद्रष्टा, वीतरागी, हित-मार्गोपदेशक 'अर्हंत्' 'जिन' तीर्थंकर कहलाते हैं।

भगवान् महावीर के समय में 'तीर्थंकर' शब्द एक विशिष्ट महत्ता का सूचक था। महावीर प्रभु के समय में ऐसे छह धर्मोपदेष्टा धर्म प्रणेता थे जो अपने को तीर्थंकर कहलाने में गौरव का अनुभव करते थे—उनके समय में उस समय के छह धर्मोपदेशक अपने को तीर्थंकर कहलवाया करते थे-मक्खलि गोशाल, प्रकुद्ध कात्यायन, पूर्णकश्यप, अजित केश कम्बलि, संजय वेलट्ठिपुत और गौतम बुद्ध। परन्तु यह शब्द केवल जैन श्रमण संस्कृति के उन्नायक, लोकोत्तर ज्ञान के धारी 'अर्हत्' जिनेन्द्रों में ही रूढ़ हो सका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन सिद्धान्त की दृष्टि से जिन्होंने ने पूर्व समय में दर्शन-विशुद्धयादि तीर्थंकर प्रकृति की कारण भूत भावनाओं का अनुचिन्तन कर उन्हें कार्यात्मक रूप दिया उन भावनाओं के पाने से प्राप्त हुई सातिशय विशुद्धि से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। उस प्रकृति का उदय जिनको हो रहा है ऐसे विशिष्ट केवलज्ञान--धारियों को ही तीर्थंकर कहा जाता है। कितनी पुण्यशाली आत्माएं वे होंगी, कल्पना कीजिए कि इस अवसर्पिणी के चतुर्थ काल में जो दश कोडा कोडी वर्ष का है इसमें, केवल चौबीस ही तीर्थंकर हो पाये। इतना विशाल पुण्य उपार्जन करने के लिए कितने निर्मल सम्यग्दर्शन की, कितने कितने विशुद्ध परिणामों की जरूरत होगी सो भी कल्पना कीजिए।

तीर्थंकरत्व की कारण भूत भावनाएँ— जिनके कारण सातिशय पुण्यरूप तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है ऐसी विशुद्धतर परिणामों वाली सोलह भावनाए हैं—१ दर्शन विशुद्धि २ विनय सम्पन्नता। ३ शील तथा व्रतों का निरतिचार पालन ४ निरन्तर ज्ञानोपयोग ५ संवेग ६ शक्ति पूर्वक त्याग ७ शक्त्यनुसार तप, ८ साधु-समाधि ९ वैय्यावृत्तिकरण १० अर्हद् भक्ति ११ आचार्य भक्ति, १२ बहुश्रुत भक्ति १३ प्रवचन भक्ति १४ षड् आवश्यक कर्तव्यों का पालन, १५ सन्मार्ग--रत्नत्रय-मार्ग-प्रभावना और १६ प्रवचन वात्सलल्य।

"एदेहिं सोलसेहि कारणेहि जीवो तित्थयर नामा गोद —कम्मं वन्धदि-महाबन्ध।

इन सोलह कारण भावनाओं से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म को बाँधता है यहां 'नामगोत्र' शब्द से यह सूचित होता है कि इस प्रकृति से उत्तम संहननादि से युक्त दिव्यशरीर, के साथ त्रिलोकाग्रवर्ती, देवेन्द्र पूजित पद प्राप्त होता है। कितने विशुद्ध परिणाम होंगे वे, जिनका फल मति-श्रुत-अवधि रूप ज्ञानों से युक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्म है। जिनके गर्भावतरण व जन्मोत्सव को भी देव-देवेन्द्र धूम धाम से मनाते हैं।

सम्यग्दर्शन की कितनी महिमा है कि—

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः ।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्थाः, वृषचक्रधराः भवन्ति लोकशरण्याः ॥

तत्वज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव दर्शन विशुद्धि रूप उत्तरोत्तर विशुद्धि को प्राप्त परिणामों से देवेन्द्र-धरणेन्द्र-नरेन्द्रों यहाँ तक कि यतिपति-गणधर देवों द्वारा पूजित-चरण होकर लोक के शरण भूत धर्म--चक्र को धारण करने वाले तीर्थंकर पद को प्राप्त होते हैं।

इन भावनाओं में दर्शन विशुद्धि भावना प्रधान है। यदि दर्शन विशुद्धि भावना न हो तो अन्य सम्पूर्ण भावनाएँ भी कार्यकारी नहीं हैं। मात्र दर्शन विशुद्धि अथवा उसके साथ और भी कुछ भावनाएँ भाई जावें तो परिणामों की विशुद्धि से तीर्थंकरत्व प्रकृति का वन्ध हो सकता है।

तीर्थंकरत्व की दुर्लभता—तीर्थंकर प्रकृति जो तीर्थंकरत्व का कारण है, अतिशय पुण्यरूप प्रकृति है। इसका बन्ध सम्यग्दृष्टियों के ही होता है। तथा इसका प्रारम्भ मनुष्य गति में केवली या श्रुत केवली के पादमूल में, क्योंकि अन्यत्र ऐसे विशुद्धिमय परिणाम कहां?

प्रभाव—इसका उदय केवल मनुष्य गति में केवली अवस्था में ही होता है-**तित्थं केवलिणि** अर्थात् वास्तव में केवली में ही तीर्थंकरत्व की संज्ञा है परन्तु यह इतनी अतिशय पुण्य वाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति है कि इसकी सत्ता जिस जीव के होती है, उसके उदय वाले शरीर में पुण्यांकुर के रूप में कुछ लोकोत्तर बातें प्रकट होती हैं। जैसे—

अतिशय रूप, सुगन्ध तन, नाहि पशेव-निहार।
प्रियहित वचन, अतुल्य बल, रुधिर श्वेत आकार॥
लक्षण सहसरु आठ तन, सम चतुष्क संस्थान।
वज्र-वृषभ नाराच जुत, ये जनमत दश जान॥

'तीर्थंकर भगवान् जिन्हें कि कैवल्य की अवस्था में तीर्थंकरत्व प्रकट होगा, जन्म के समय से ही अतिशय रूपवान् होते हैं, उनके शरीर से सुगन्धि निकलती है, उनके शरीर से पसीना नहीं निकलता, मलमूत्र भी नहीं होता। वे प्रिय वचन वाले होते हैं, अतुल्य बल के धारी होते हैं, उनके शरीर का रक्त सफेद वर्ण का होता है, शरीर १००८ शुभ लक्षणों से युक्त होता है, उनके शरीर का गठन समचतुरस्र सर्वांग दिव्य शोभा-सम्पन्न-संस्थान से युक्त होता है तथा उनकी अस्थियां वज्र से बनी हुई होती हैं।'

इसी प्रकार जब वे कैवल्य को प्राप्त कर लेते हैं तब समय भी कुछ अलौकिक दिव्य अतिशयों से युक्त होते हैं।

योजन शत इक में सुभिख, गगन-गमन, मुखचार।
नहि अदया, उपसर्ग नहि, नाही कवलाहार॥
सब विद्या ईश्वरपनो, नाहि बढ़ें नख--केश।
अनिमिष दृग, छाया--रहित, दश केवल के वेश॥

जहाँ तीर्थंकर भगवान् होते हैं उसके सौ योजन तक अकाल दुर्भिक्ष नहीं, उनका शरीर इतना लघु हो जाता है कि उन्हें धरती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर नहीं चलना पड़ता, आकाश में ही चार अंगुल ऊपर उनका विहार होता है, दिव्य स्फटिक सी कान्ति होने के कारण उनके चार मुख दिखते हैं, उनके सद्‌भाव में प्राणियों के हृदय से हिंसक भाव निकल जाते हैं, कोई उपसर्ग नहीं होता, वे ग्रास आहार नहीं करते, वे सब विद्याओं के ईश्वर होते हैं, उनके नख और केश नहीं बढ़ते, उनके नेत्र पलकों की टिमकार से रहित होते हैं और शरीर की छाया नहीं पड़ती।

इनके अतिरिक्त देवों के द्वारा अनेक प्रभावकारी कार्य किये जाते हैं।

यह उनके पुण्य का ही प्रभाव है कि देवगण उनके पाँच विशेष अवसरों पर कल्याणक मङ्गलोत्सव मनाते हैं।

भरत ऐरावत क्षेत्रों में होने वाले तीर्थंकरों के पांच ही मङ्गलोत्सव मनाये जाते हैं विदेह क्षेत्र सम्बन्धी तीर्थंकरों के तीन।

पञ्च कल्याणक—तीर्थंकरों के गर्भागमन, जन्म, तप, ज्ञान और मुक्तिलाभ के पांच विशेष अवसरों पर देवों और मनुष्यों द्वारा जो विशेष मंगल उत्सव मनाये जाते हैं वे संसार के कल्याण कारक होते हैं अतः उन्हें 'कल्याणक' कहते हैं—

गर्भ कल्याणक—जिस सातिशय पुण्य वाले भव्यात्मा के तीर्थंकर प्रकृति का उदय आसन्न होता है तब वह विशुद्ध आत्मा देव या नरक गति में अपनी उस जाति की आयु का भोगकर वहाँ से चय कर मानवी-गर्भ में अवतरण करता है। वह क्षत्रिय कुल में ही उत्पन्न होता है। उस पुण्यात्मा के प्रभाव से भावी माता-पिता के घर गर्भागमन के छह महीने पहले से ही दिव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्न-वृष्टि दिन में तीन बार होने लगती है। भावी तीर्थंकर के गर्भस्थ होने पर माता की देहकान्ति दिव्य हो जाती है। वह विशेष स्मरण शक्ति तथा सन्मति को धारण करने वाली हो जाती है। देवियाँ उसकी सेवा में नियुक्त होती हैं। माता को १६ स्वप्न दृष्टिगत होते हैं जो भावी सन्तान के अतिशय पुण्य की सूचना देने वाले होते हैं। भावी तीर्थंकर के माता-पिता के नगर की दिव्य रचना इन्द्रशिल्पी कुबेर द्वारा की जाती है।

जन्म कल्याणक—होनहार तीर्थंकर शिशु के जन्म से तीनों लोकों में आनन्द छा जाता है, वह शिशु जन्म से ही मतिश्रुत अवधि तीन ज्ञान का धारक होता है। देवों के यहां दिव्य चिह्न प्रगट होते हैं जिससे वे प्रभु जन्म को जानकर देवेन्द्रों सहित भूलोक में तीर्थंकर बालक के अभिषेक की तैयारियां सुमेरु पर्वत पर करते हैं। उस तीर्थंकर शिशु का इन्द्रादि देव क्षीर समुद्र के जल से १००८ कलसों द्वारा बड़े समारोह के साथ अभिषेक करते हैं। पुनः दिव्य अलंकारों से अलंकृत करते हैं। उनके साथ क्रीड़ा के लिये देव नियुक्त होते हैं। जन्म का यह उत्सव जन्म कल्याणक कहलाता है।

तप कल्याणक—काल लब्धि की समीपता में उन तीर्थंकर प्रभु को वैराग्य प्राप्त होता है और वे विचार करने लगते हैं।

छेत्तुं मूलात् कर्मपाशानशेषान्, सद्यस्तीक्ष्णैस्तद्यतिष्ये तपोभिः।
को वा कारागाररुद्धं प्रबुद्धः, शुद्धात्मानं वीक्ष्य कुर्यादुपेक्षाम् ॥

—'अब मैं तीक्ष्ण तपश्चरण के द्वारा शीघ्र ही कर्म बन्धनों को मूल से काटने के लिए उद्योग करूँगा। ऐसा कौन व्यक्ति है जो मोह निद्रा दूर होने से जगकर अपनी निर्मल आत्मा को कर्मों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की कारा में पराधीन देखकर उपेक्षा या प्रमाद करेगा।

अतः आत्महित के लिये प्रबुद्ध वे राज-पाट ऐश्वर्य-विलास त्यागकर कल्याण करी दीक्षा हेतु बन को चल देते हैं। लौकान्तिक देव उनके वैराग्यमय परिणामों का समर्थन करते हैं और कहते हैं—क्तते कालां धर्मतीर्थ--प्रवर्तने — और हे भगवन्—

चतुर्गति–महादुर्गे दिग्मूढस्य प्रभो! दृढम्।
मार्गं दर्शय लोकस्य मोक्षस्थानप्रवेशकम्॥

'हे नाथ, चारों गति रूप महाकान्तार में दिशाओं के ज्ञान से शून्य जीवों को मुक्तिपुरी में पहुंचाने का सुनिश्चित मार्ग बतलाइए।'

इस प्रकार वैराग्य का समर्थन कर वे लौकान्तिक देव अपने स्थान को चले जाते हैं। चारों निकाय के देव आकर तीर्थंकर प्रभु का दीक्षाअभिषेक करते हैं। वनगगन के अर्थ प्रभु की पालकी को पहले सात पेंढ़ नरलोक के नृपतिगण कन्धे पर रखते हैं, इसके बाद सात पेंढ़ विद्याधर, तदनन्तर देवगण आकाश मार्ग से दीक्षा वन उस पालकी को ले जाते हैं। वहां प्रभु देवों, सिद्ध भगवान् तथा आत्मा की शाक्षी पूर्वक अन्तरंग वहिरंग परिग्रह का त्यागकर सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर पंचमुष्टि केश लुञ्च करते हैं, उस समय वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानों अनन्त संसार की कालिमा मय परम्परा का उच्छेद कर रहे हों। प्रभु के इस दीक्षा उत्सव पर देव–देवेन्द्र बड़ा उत्सव मनाते हैं इसे ही दीक्षा या तप कल्याणक कहते हैं।

ज्ञान कल्याणक—उग्र तपों को तपते हुए जब भगवान् शुक्ल ध्यान की तीक्ष्ण तलवार की धारा द्वारा मोह रूपी दुर्जय शत्रु को एवं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय कर्मों को ध्वंस कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रैलोक्य पूज्य अचिन्त्य और अद्भुत अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य रूप चतुष्टय से युक्त आर्हत् पद को प्राप्त करते हैं।

स्वयोग-निस्त्रिंश-निशातधारया, निनाय यो दुर्जयमोहविद्विषम्।
अव पदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं, त्रिलोक-पूजातिशयास्पदं पदम्॥

उस समय वह प्रभु अपने निरावरण केवल ज्ञान द्वारा तीनों लोकों के त्रिकालवर्ती पदार्थों को उनकी समस्त पर्यायों सहित युगपद् जानते हैं। प्रभु की वह महिमा धन्य हैं। उसी समय वे तीर्थंकर पदवी को प्राप्त करते हैं। प्रभु के ज्ञान प्राप्ति के अवसर पर समस्त देवों सहित इन्द्र फिर आते हैं और अपने शिल्पी कुबेर द्वारा भव्य जीवों के हितार्थ प्रभु की सत्य स्याद्वादमयी वाणी का प्रकाश हो, इसके लिये समवशरण की अद्भुत रचना कराते हैं। प्रभु को दश अतिशय प्रगट होते हैं, देवगण भी चतुर्दश अतिशय प्रभावनार्थ करते हैं। अष्ट प्रातिहार्य युक्त प्रभु समवशरण भूमि में गन्ध कुटी से चार अंगुल ऊपर अन्तरिक्ष में कमलाकार आसन पर विराजमान, सूर्य को अपनी प्रभा से लज्जित करते प्रतीत होते हैं। असंख्य देवताओं सहित इन्द्र १००८ नामों से भगवान् की स्तुति करते हैं।

तव वागमृतं पीत्वा, वयमद्यामराः स्फुटम्।
पीयूषमिदमिष्टं नो देव, सर्वरुजा-हरम्॥

'हे देव, आपके वचन रूप अमृत को पीकर आज हम लोग वास्तव में अमर हो गये हैं। इसीलिए सब रोगों को हरने वाला आपका यह वचन रूप अमृत हम लोगों को बहुत ही इष्ट है।'

भगवन्, भव्यशस्यानां, पापाग्रहशोषिणाम्।
धर्मामृतप्रसेकेन, त्वमेधि शरणं विभो॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाहुबली स्वामी

श्रवण बेलगुल (मैसूर राज्य) में स्थित भगवान् ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र बाहुबली स्वामी की ५८ फुट ऊँची यह ध्यानस्थ मूर्ति अपनी विशालता और अनुपम सौन्दर्य के कारण संसार का आश्चर्य है। १००० वर्ष के बाद भी यह मूर्ति ऐसी मालूम पड़ती है मानों कल की बनी हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

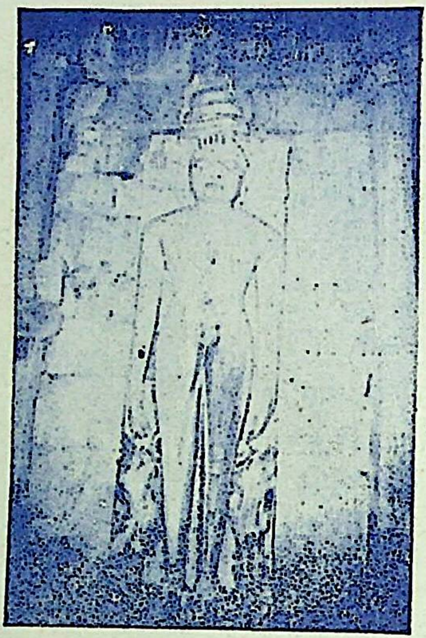

उर्दमऊ की जैन मूर्ति

चन्देल कालीन यह जैन तीर्थंकर की मूर्ति उर्दमऊ जिला छतरपुर म. प्र. के एक प्राचीन शैली के देवालय में स्थापित है। मूर्ति का शिलालेख मिट गया है पर बुन्देल खण्ड में इसी प्रकार अन्यत्र बिखरी सामग्री से आधार पर यह चन्देलकाल (१० वीं शती) की कलाकृति है। ११ फुट ऊँची है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'हे भगवन्, भव्यात्मा रूपी धान्य, पापाचरण रूप अनावृष्टि से सूख रही थी, आपके धर्मामृत के सिञ्चन से वे लहरा उठे।'

प्रभु जहां जहां विहार करते हैं वह भूमि-भाग धन्य और वहां के भव्यात्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग का प्रकाश पा जाते हैं।

प्रभु के इस आर्हन्त्य पद की प्राप्ति के उपलक्ष में जो मंगलोत्सव मनाया जाता है वही ज्ञान कल्याणक है। इसे भी देवगण अपूर्व उल्लास के साथ मनाते हैं।

मोक्ष कल्याणक—तीर्थंकर भगवान् समवशरण भूमि में भव्य जीवों के भाग्य से व वचन योग के बल से दीर्घ समय तक उपदेशामृत का पान कराकर आयुष्य कर्म की समाप्ति पर शेष अघातिया कर्मों का नाश करने के हेतु योग निरोध करते हैं और योग निरोध से कर्मों का नाशकर सर्व प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर आत्म-स्वातंत्र्य रूप मुक्ति को प्राप्त कर निराकार, निर्देह, लोकान्त-शिखर पर विराजमान होते हैं। उस समय वे—

णिकम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संज्जुता॥

'समस्त कर्मों से रहित, आठ गुणों से युक्त, चरम शरीर से किञ्चित् न्यून, निराकार आत्म-प्रदेशों से युक्त, लोक के अग्रभाव में स्थित, नित्य और अपने आत्म परिणमन—उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-रूप होते हैं।'

उस समय प्रभु के निर्वाण को ज्ञात कर देवगण उत्सव मनाने के लिये आते हैं। प्रभु का दिव्य औदारिक शरीर तो ने स्वाभाविक परिणमन से कपूर की भाँति उड़ जाता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिखर जाता है, केवल नख और केश ही शेष रहते हैं। उन नख और केशों को। देवगण क्षीर सागर में विसर्जित करने के लिए रत्न-पेटिका में रख लेते हैं तथा प्रभु के शरीर की प्रतिकृति को अग्नि कुमार देवों के मुकुटानल से संस्कारित कर अपना सौभाग्य मानते है। प्रभु के मुक्तिलाभ पर दीपमालिका प्रज्वलित करते हैं—यही निर्वाण कल्याणक है।

भरत तथा ऐरावत क्षेत्रों में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में २४-२४ तीर्थंकर ही होते हैं।

वर्तमान काल के चौबीस तीर्थंकर--

जैनागम में अनन्त प्रवहमान काल को अवसर्पिणी उत्सर्पिणी रूप कल्प कालों में विभाजित किया गया है। अवसर्पिणी काल में—प्राणियों के पुण्य, ऐश्वर्य, पुरुषार्थ, आयु, देह, धर्म आदि की क्रमशः अवनति होती है उसी प्रकार उत्सर्पिणी काल में—उन्नति। प्रत्येक अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी के उपर्युक्त आधार पर छह खण्ड हैं।

१ अति सुखमा, २ सुखमा, ३ सुखमा-दुखमा, ४ दुखमा-सुखमा, ५ दुखमा एवं ६ अति दुखमा इसी प्रकार—१ अतिदुखमा, २ दुखमा, ३ दुखमा-सुखमा, ४ सुखमा-दुखमा, ५ सुखमा एवं अतिसुखमा पूरे युग चक्र को एक कल्पकाल कहते हैं।

प्रत्येक अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी में २४-२४ तीर्थंकर धर्मप्रवर्तन करने वाले होते हैं।

वर्तमान काल के २४ तीर्थंकर ये हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ श्री ऋषभ नाथ, २ अजित नाथ, ३ सम्भव नाथ, ४ अभिनन्दन नाथ, ५ सुमतिनाथ, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्वनाथ, ८ चन्द्रप्रभ, ९ पुष्पदन्त, १० शीतलनाथ, ११ श्रेयांसनाथ, १२ वासुपूज्य, १३ विमलनाथ, १४ अनन्तनाथ, १५ धर्मनाथ, १६ शान्तिनाथ, १७ कुंथुनाथ, १८ अरहनाथ, १९ मल्लिनाथ, २० मुनिसुव्रत नाथ, २१ नमिनाथ, २२ नेमिनाथ, २३ पार्श्वनाथ और २४ महावीर।

इनमें से वासुपूज्य मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर-वर्धमान ने कुमार अवस्था में ही दीक्षा धारण की थी।

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ व अरहनाथ ने चक्रवर्तित्व पद भी अलंकृत किया था। नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ऐतिहासिक महापुरुष माने जाते हैं। भगवान् ऋषभ देव ही जैन धर्म या 'आर्हत्' धर्म के आद्य प्रवर्तक इस युग के माने जाते हैं। इनका वर्णन वैदिक साहित्य एवं पुराण साहित्य में भी आता है। मोहन जोदाड़ो की खुदाई में जो वृषभांकित नग्न मूर्तियां कायोत्सर्ग की मुद्रा में प्राप्त हुई हैं, उन्हें कुछ विद्वानों ने ऋषभदेव की मूर्ति ही बतलाया है।

भगवान् ऋषभदेव--

इस अव सर्पिणी के तृतीय काल में १४ मनु हुए। भोग भूमि के नष्ट होने और कर्म भूमि के प्रारम्भ में इन मनुओं ने होने वाले परिवर्तनों की सूचना तथा उन्हीं के अनुसार जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी। इन मनुओं में अन्तिम १४ वें मनु नाभिराय थे। इन्होंने बच्चों की बढ़ी हुई नाभि नाल को काटने की शिक्षा दी थी, अतः इनका नाम नाभि पड़ा। इनकी पत्नी का नाम मरु देवी था इनसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही भगवान् श्री ऋषभदेव ने जन्म लिया। इन्होंने ने समाज निर्माण की व्यवस्था की। ग्रामों की सुव्यवस्था की तथा भगवान् ऋषभदेव ने जो कि बचपन से ही बड़ी विलक्षण प्रतिमा के थे, जन समाज को असि–शस्त्र विद्या, मसि–लेखन विद्या, कृषि–खेती बागवानी आदि की विद्या, शिल्प–हस्त कारीगरी, विद्या–तरह तरह की भौतिक विद्याएँ तथा वाणिज्य–व्यापार, गोपालन आदि कार्य बताकर समाज निर्माण के साथ कर्म योग का पाठ पढ़ाया। समाज व्यवस्था चलाने के लिये इन्होंने समाज में से रक्षा भार सम्हालने में योग्य व्यक्तियों को क्षत्रिय, व्यापार, कृषि कार्य आदि से आजीविका चलाने के इच्छुक लोगों को वैश्य तथा सेवा वृत्ति के योग्य लोगों को शूद्र नाम दिया।

भगवान् ऋषभदेव की दो पत्नियां थीं—सुनन्दा और नन्दा इनसे उनके सौ पुत्र और दो पुत्रियां हुई। बड़े पुत्र का नाम भरत था, जिनके नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। ये इस युग के प्रथम चक्रवर्ती राजा थे। भगवान् ऋषभदेव के एक दूसरे पुत्र बाहुबली थे, जो 'कामदेव' पद को धारण करने वाले अतिशय दिव्य शोभा से सम्पन्न तथा शारीरिक बल में भी अनोखे थे। बाहुबली अमित बल के धारक स्वतंत्रता प्रिय राजकुमार थे। उन्होंने भरत चक्रवर्ती की आज्ञा में रहने का विरोध किया, जिससे इस कर्म भूमि में सर्व प्रथम युद्ध हुआ। इस युद्ध में भरत चक्रवर्ती से बाहुबली ने ही विजय पाई।

ऋषभ देव ने कर्म की शिक्षा दी। भोगभूमि का अन्त होने से उस समय के लोगों को जो कल्प वृक्षों से सहायता मिलती थी, वे नष्ट हो चुके थे। लोग जीविका निर्वाह के नये उपायों से अनवगत थे। भगवान् ऋषभदेव ने उन्हें नयी उगी हुई वनस्पतियों का जीवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में उपयोग करना सिखाया। इक्षु दण्डों से रस निकालना सिखाया अतएव इनके वंश का नाम 'इक्ष्वाकु' पड़ा। प्रजा की व्यवस्था करने के कारण इन्हें **प्रजापति** भी कहा गया।

इन्होंने अपने पिता नाभिराय के द्वारा दिये गये राज्य को बहुत समय तक भोगा। एक दिन ऋषभदेव राज्य-सिंहासन पर बैठे हुए थे। राज-दरबार लगा हुआ था। नीलाञ्जना नाम की अप्सरा नृत्य कर रही थी, अचानक नृत्य करते करते वह गिर गई भगवान् ऋषभदेव इस घटना से विरक्त हो गये, उन्हें संसार के सुख भोग क्षणिक प्रतीत हो उठे, तुरन्त ही उन्होंने पुत्रों में राज्य का सम्यग् विभाजन कर, दीक्षा ले ली और ६ माह की समाधि लगाकर अविचल ध्यान मग्न हो गये। ६ माह के बाद ध्यान से निवृत्त होकर वे आहार के लिये निकले। उनके दिगम्बर वेश को देखने के लिये प्रजा उमड़ पड़ी। भक्त लोग उनके चरणों में अनेक प्रकार के उपहार भेंट करने लगे पर वे तो सब परिग्रह से विमुक्त थे। उन्हें तो केवल शरीर-स्थिति के लिए शुद्ध आहार की ही आवश्यकता थी, पर उक्त भिक्षा देने की विधि से सब अपरिचित थे। वे छह महीने तक मौन धारण कर चर्या को निकलते रहे, पर कहीं कोई ठिकाना नहीं पड़ा।

एक दिन घूमते घूमते उन्हें हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस ने जिन्हें पूर्व-भव स्मरण से आहार विधि ज्ञात हो चुकी थी, ऋषभदेव को नवधा भक्ति पूर्वक शुद्ध 'इक्षु' रस का आहार दिया। भगवान् ने पाणिपात्र में रस लेकर पान किया। वह दिन वैशाख शुक्ल तृतीया का था। इस आहार दान की महिमा के कारण वह तिथि अक्षय हो गई और इसीलिये 'अक्षय तृतीया' कहलाती है, आहार करके भगवान् फिर वन को चले गये और ध्यान मग्न हो गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकबार 'पुरिमताल' नाम के नगर में एक उद्यान में ध्यान मग्न भगवान को 'कैवल्य' प्राप्त हुआ। वे चार घाति कर्मों को जीतने के कारण 'जिन' कहलाये। उन्होंने एक विशाल संघ के साथ धर्मोपदेश के लिये विहार किया। और अपने उपदेश में अहिंसा को प्रधानता दी। इनका यह सिद्धान्त जैन सिद्धान्त, 'जैन धर्म' अथवा 'आर्हत' धर्म के नाम से विख्यात हुआ। इनके उपदेशों का लाभ पशुओं तक को मिलता था। अनेक वर्षों तक उपदेशार्थ भ्रमण करते करते ये अन्त में कैलाश पर्वत पर पहुंचे, वहां पुनः ध्यानस्थ हो, योग-निरोध कर समस्त कर्मों का नाश कर मुक्ति को प्राप्त हुए।

भगवान् समन्तभद्र स्वामी ने इनकी स्तुति अपने स्वयम्भू स्तोत्र में की है जिसका हिन्दी रूपान्तर निम्न प्रकार है—

स्वयंभूत भूतल-हितकारी केवलज्ञान-विभूति-नयन।
गुणसमूह-किरणों से शशि सम, तिमिर-हरन जो हैं भगवन्॥
जीवन शील प्रजा को पहले, कृष्यादिक षट् कर्म दिये।
अतिशय उन्नत तत्वबोध से, ही ममत्व सब तोड़ दिये॥

सती वधू सम सागर-वसना, इस वसुधा का करके त्याग।
हो सहिष्णु, अच्युत, मुमुक्षु, इक्ष्वाकु कुली ने लिया विराग॥
ध्यानवह्नि से राग-द्वेष को, जिसने भस्मीभूत किया।
देकर तत्व मुमुक्षु जगत को ब्रह्मपदामृत प्राप्त किया॥

सो सत्पूजित वृषभ निरञ्जन ज्ञाता, दृष्टा, कुमत-हरन।
पावन मन मम करें प्रभू वे, श्री जिन नाथ नाभिनन्दन॥

भगवान् नेमिनाथ—बाईसवें तीर्थंकर थे। ये श्री कृष्ण के चचेरे भाई थे। इनके पिता का नाम समुद्र विजय था, जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्धक वृष्णि के पुत्र थे। समुद्र विजय के यहां, माता शिवदेवी की कुक्षि से इन्होंने जन्म लिया और वसुदेव के यहां देवकी की कोख से श्री कृष्ण ने। श्री वसुदेव समुद्र विजय के छोटे भाई थे। जरासन्ध के भय से यादवगण शौरीपुर छोड़कर द्वारिका में रहने लगे थे। नेमिनाथ का विवाह जूनागढ़ के राजा अग्रसेन की पुत्री राजमती से निश्चित हुआ। बड़ी धूम धाम से बारात जूनागढ़ के निकट पहुंची। नेमिनाथ प्रकृति क शोभा निरखते उल्लास के साथ अपने रथ में आगे बढ़ रहे थे। उनकी दृष्टि अचानक एक बाड़े की ओर गई, तो उन्होंने देखा कि बाड़े में बहुत से पशु बन्द हैं, वे निकलना चाहते हैं, पर कोई मार्ग नहीं। कुमार नेमिनाथ ने सारथी से पूछा—ये पशु इस बाड़े में इस तरह क्यों बन्द हैं सारथी ने बताया—आपकी बारात में सब प्रकार के लोग आये हैं, बहुत से मांसाहारी भी हैं, उनके निमित्त इन पशुओं को यहां बन्द किया गया है।

नेमिनाथ कुमार का दयालु हृदय द्रवित हो उठा। करुणा से ओत-प्रोत राजकुमार ने कहा—'यदि मेरे विवाह के निमित्त इनका वध किया जाने वाला है तो धिक्कार है ऐसे विवाह को अब मैं विवाह ही नहीं करूंगा।' उनके आत्मबोध पूर्ण हृदय में वैराग्य जागा और तुरन्त ही मुकुट, कंकण, बाजूबन्द, हार आदि विविध रत्नाभरणों को उतार फेंक, वन की ओर प्रस्थित हो गये। बारात में इस समाचार के फैलते ही कोहराम मच गया।

उधर जूनागढ़ में भी जब यह समाचार फैला, लोग चकित रह गये। कुमारी राजमती की हालत तो बेहाल थी, मूर्छित होकर बेचारी भूमि पर गिर पड़ी। बहुत से लोग नेमिकुमार को लौटाने के लिए दौड़े, पर सारे प्रयत्न निष्फल हुए। वे गिरिनार पर्वत पर चढ़ गये और वहां सहस्राम्र वन में उन्होंने आत्मा और सिद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् की शाक्षी पूर्वक सिद्ध भगवान के गुणस्मरण करते हुए समस्त वस्त्र उतार कर दैगम्बरी दीक्षा ले, आत्म ध्यान में तत्पर हो गये। कुमारी राजमती ने भी प्रभु के मार्ग का अनुसरण कर उन्हीं के पाद मूल में 'आर्यिका' के व्रत ग्रहण किये। उग्र तपश्चरण के बाद प्रभु ने केवल ज्ञान प्राप्त किया। बहुत समय तक धर्मोपदेश के बाद अन्त में गिरिनार पर्वत से ही योग निरोध द्वारा मुक्ति लाभ किया।

नेमिनाथ प्रभु एक ऐतिहासिक पुरुष हैं। वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में इनका नाम आदर के साथ उल्लेख किया गया

हे भगवन्, आपकी महिमा का क्या वर्णन करें—

शुक्ल-ध्यानानल से तुम ने जला दिये हैं कर्मेन्धन।
ऋषि भगवान् नेमि जिनवर हे, तुम हो केवलज्ञान-नयन॥

लोकालोक प्रकाशित करके, ज्ञान-विपुल किरणों से तुम।
पावन विनय, धर्म-इन्द्रिय दम, नायक हरिकुल केतन तुम॥

शील-जलधि, जिन कुञ्जर सम हे, आत्म विभव के नायक हो।
वासव-चर्चित-चरण-कमल हे, अजर, अमर, शिव-नायक हो॥

भगवान् पार्श्वनाथ—भगवान् पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थंकर थे। ये ऐतिहासिक महापुरुष भी हैं, आज से तीन हजार वर्ष पहले वाराणसी नगरी में, वहां के राजा अश्वसेन के यहां इनका जन्म हुआ इनकी माता का नाम वामादेवी था। बाल्यकाल से ही इनकी चित्त वृत्ति वैराग्यमय थी। माता-पिता ने विवाह का प्रस्ताव किया, तो उन्होंने अपने जीवन के महान् लक्ष्य को बतला कर, विनम्रता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से उसे टाल दिया। एक बार ये गंगा के किनारे घूमने निकले, वहाँ इन्हें एक जटाधारी तपस्वी पञ्चाग्नि तप तपते दिखा। उसके पास पहुंच कर इन्होंने कहा—'इन लक्कड़ों को जलाकर जीव हिंसा क्यों करते हो? कुमार की बात सुनकर तपस्वी बड़ा क्रुद्ध हुआ और बोला—'कहाँ हैं जीव? तब कुमार ने तपसी के पास से कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी को फाड़ा, उसमें एक नाग-नागिन का जलता हुआ जोड़ा निकला, मरणोन्मुख नाग-नागिन को कुमार ने पञ्च नमस्कार मंत्र दिया, जिसके प्रभाव से उनकी मृत्यु समता-मय परिणामों से हुई और उन्हें देव-गति प्राप्त हुई।

कुमार का मन इस घटना से बड़ा दुखी हुआ। उन्होंने जीवन और सांसारिक सुखों की अनित्यता का चिन्तन किया। वैराग्य-वह्नि से प्रज्वलित उनके हृदय ने सांसारिक सुख-कामनाओं को दग्ध कर दिया। वे राज्य सुख को त्याग कर प्रव्रजित हो गये। एक बार वे अहिच्छेत्र के वन में ध्यानस्थ थे, कि उनका पूर्व जन्म का वैरी कोई देव वहां से कहीं जा रहा था। योगी पार्श्व को देख जाति-स्मरण से उसका वैर क्रोध रूप प्रज्वलित हो उठा। वह उनके ऊपर ईंट और पत्थरों की वर्षा करने लगा। इतने पर भी उन्हें ध्यान से अविचलित देख, वह विक्रिया से जिसमें बिजली की कड़कड़ाहट, ओलों की तड़तड़ाहट, वेगवान् वायु की मरमराहट, थी, ऐसी मूसलाधार वर्षा करने लगा। घना अन्धकार व्याप्त हो गया, बिजली की कोंध भयानक हो उठी, विक्रिया से नाना प्रकार के भयानक हिंस्र प्राणियों की भयावह आवाजों, प्रेतों की विकृत आकृतियों से वह क्षेत्र अति भयंकर हो उठा। इतने पर भी जब वे विचलित न हुए तो उसने कई प्रकार से उन्हें त्रास देने का उपक्रम किया, ऐसे घोर उपसर्ग के समय जो नाग-नागिन पाताल लोक में धरणेन्द्र-पद्मावती हुए थे, वे अपने परम उपकारी पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसर्ग आया जान, वहां तुरन्त आये। पद्मावती ने अपने मुकुट के ऊपर भगवान् को उठा लिया और धरणेन्द्र ने सहस्र फण वाले सर्प का रूप धारण कर भगवान् के ऊपर अपना फण फैला लिया, इस तरह उस उपसर्ग से उनकी रक्षा हुई।

ध्यान से प्राप्त परम विशुद्धि द्वारा भगवान् ने उसी समय घाति कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। उस वैरी की कषाय भी शान्त हुई, उसने अपने कृत्य का पश्चात्ताप करते हुए क्षमा याचना की। भगवान् ३० वर्ष की अवस्था में साधु धर्म में दीक्षित हुए थे। कैवल्य उपलब्धि के पश्चात ७० वर्ष तक जगह जगह विहार करके धर्मोपदेश देते हुए १०० वर्ष की अवस्था में सम्मेद शिखर से योग-निरोधकर सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

भगवान् पार्श्वनाथ के ही नाम पर श्री सम्मेद शिखर 'पार्श्वनाथ हिल' कहलाता है। भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा उनके उपसर्ग की घटना की स्मृति में सर्प-फणामण्डित ही रहती है। इनका धर्म 'चातुर्याम' कहलाता है, जिसमें अहिंसा,सत्य, अचौर्य एवं अपरिग्रह को लिया जाता है। ब्रह्मचर्य व्रत की गणना उन्होंने अहिंसा में ही की थी।

जगत द्वन्द-दुख अघ नाशन के, हेतु बने भविकों के साथ।
शरणभूत प्रभुवर हों मेरे, मुक्तिरमा पाने को साथ॥

योगों की तीखी कृपाण से, जीता दुर्जय मोह महान्।
आर्हत्पद अचिन्त्य महिमा मय, पाया पार्श्वनाथ भगवान्॥

निष्कलंक लखकर मुनिगण ने, जगत्पूज्य पद पाने को।
निज आतम में ध्यान लगाया, नमूँ उन्हीं पारस प्रभु को॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् महावीर—भगवान् महावीर अन्तिम २४ वें तीर्थंकर थे। लगभग ६०० ई. पू. विहार प्रान्त के कुण्ड नगर के प्रजातंत्र शासक नाथ गोत्रीय सिद्धार्थ के घर इनका जन्म हुआ था। इनकी माता वैशाली नरेश राजा चेटक की पुत्री प्रियकारिणी त्रिसला थी।

महावीर का जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन हुआ था। महावीर एक बार बचपन में अन्य बालकों के साथ खेल रहे थे, इतने में एक भयंकर विषधर सांप कहीं से आया और इन पर झपटा। महावीर ने उसे निर्मद कर दिया। उनका जन्म नाम वर्धमान था, पर इस घटना से वे वीर कहलाने लगे। वे विशेष ज्ञानी थे एक बार उनके दर्शन मात्र से एक मुनि के हृदय की शंकाएँ दूर हो गई और तब से उन्हें सन्मति कहा जाने लगा। महावीर जब युवा हुए तो उनके विवाह का प्रश्न उपस्थित हुआ, पर महावीर तो अपना जीवनोद्देश्य दूसरा ही बना चुके थे।

उनके समय भारतीय समाज सब प्रकार से गिरा हुआ था। लोगोंके सोचने ढँग बिल्कुल संकुचित और स्वार्थमय हो गया था। यज्ञों में पशु हिंसा का जोर था, कहीं कहीं तो नरहिंसा—नरमेध यज्ञ का भी विधान किया जाता था। समाज में विषमता बढ़ रही थी, ऊँच-नीच के भेद में वृद्धि के साथ नीचों के साथ क्रूरता का व्यवहार होता था। वेद पाठ अकस्मात् भी उनके कानों में पहुंच जाने पर कानों में शीशा भर दिया जाता था। स्त्रियों की दशा भी बड़ी खराब थी। अन्ध विश्वास बढ़ रहे थे। उन्नत वर्ग के द्वारा निम्न वर्ग पर किये जाने वाले क्रूर पैशाचिक अत्याचारों से महावीर की आत्मा क्रन्दित हो उठी। मूक पशुओं पर स्त्रियों पर, शूद्रों पर होने वाले अत्याचार उनकी दयालु आत्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को असह्य हो उठे और उन्हें इस सब का एक मात्र उपाय दिखा आत्म-त्याग के मार्ग से धर्मोपदेश देकर समाज को सन्मार्ग दिखाना। तदनुसार उन्होंने विवाह के प्रस्ताव को विनम्रता पूर्वक टाल कर, दीक्षा धारण की और ध्यानस्थ हो गये।

ध्यान-वह्नि से कर्म समूह जलाकर वे पूर्णज्ञानी, सर्वदृष्टा हो गये। इस अवस्था में भी वे ६६ दिन तक मौन विहार करते रहे। कैवल्य उन्हें वैशाख शुक्ल १० वीं को प्राप्त हो गया था, पर गणधर-जो कि उनके उपदेशों को सबको समझा सके, नहीं मिला था, अतएव विहार करते-करते मगध की राजधानी राजगृही में विपुलाचल पर्वत पर ठहरे। आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को उन्हें गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामके एक बहुत बड़े विद्वान्, जो वेद-वेदाङ्ग पारंगत थे, अपनी शंकाओं का समाधान चाहने के सम्बन्ध में मिले। पर महावीर के दर्शन से उनको आत्म-दर्शन ही प्राप्त हो गया। उन्होंने उसी समय प्रभु महावीर से दीक्षा ले ली, उसी समय उन्हें मनः पर्यय ज्ञान भी प्रगट हुआ और वे श्री महावीर स्वामी के गणधर नियुक्त हुए।

श्रावण कृष्ण प्रतिपदा अभिजित् नक्षत्र में उन्होंने धर्मतीर्थ करते हुए उपदेश दिया—

पंच सेलपुरे रम्मे विउले पव्वदुत्तमे।
णाणा दुम समाइण्णे देवदाणववंदिदे॥
महावीरेणत्थो कहिओ भविलोयस्स।
वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्हि सावणे बहुले।
पडिवदपुव्वदिवसे तित्थुपत्ती दु अभिजिम्हि॥
णिस्संसय करो वीरो महावीरो जिणुत्तमो।
रागदोसभयादीदो धम्म तित्थस कारओ॥

धवलग्रन्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मगध सम्राट् श्रेणिक (बिम्बसार) भगवान् महावीर स्वामी के धर्मोपदेश के प्रथम श्रोता थे। उनके प्रश्नों के उत्तर रूप में वीर स्वामी का धर्मोपदेश सञ्चित है।

तीस वर्ष की आयु में दीक्षा तथा १२ वर्ष के उग्र तपश्चरण के पश्चात् तीर्थंकर केवली भगवान् ३० वर्ष तक लगातार धर्मचक्र प्रवर्तत करते रहे। पूरे भारत में वे अपना धर्मोपदेश विहार करते हुए करते रहे, उनकी सभा में मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी, साधारण पशु-पक्षी ही नहीं, हिंस्र पशु-पक्षी भी धर्मलाभार्थ पहुंचते थे।

उनका संघ मुनि-आर्यिका श्रावक-श्राविका, चार रूप में विभाजित था।

अन्त में ७२ वर्ष की आयु में पावापुर के निकट कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन स्वाति नक्षत्र में रात्रि के समय योग-निरोध कर अघाति कर्मों का क्षय कर 'सिद्ध' पद को प्राप्त हुए।

'पच्छा पावा णयरे कत्तिय मासस्स किण्ह चोद्दासि ।
सादीए रत्तीए सेसरयं छेत्तु णिव्वाओ ॥'

—जय धवल

आओ सब मिल, मंगल गावें
हरष हरष कर, उमग उमग कर,
वीर प्रभू की, गुण गाथा से,
उर वीणा के तार सजावें। आओ सब मिल० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्लभ मानव पर्याय की सफलता

लोक में अनन्तानन्त जीव राशि है। उसमें अन्य गति के जीवों की अपेक्षा मनुष्य गति को धारण करने वाले जीव बहुत ही अल्प हैं। मनुष्यों से अधिक देव और नारकी हैं। देव, नारकी और मनुष्य इन तीनों को मिलकर उनसे कई गुने अधिक जीव तिर्यञ्च गति में हैं। तिर्यञ्चों में भी त्रसों की अपेक्षा स्थावर जीव अधिक हैं। संज्ञी पञ्चेन्द्रियों की अपेक्षा असंज्ञी और असंज्ञियों पञ्चेन्द्रियों की अपेक्षा चौइन्द्री अधिक हैं, इसी क्रम में एकेन्द्रिय जीवों में वनस्पति कायिक जीव सबसे अधिक हैं, इनमें भी अप्रतिष्ठित की अपेक्षा सप्रतिष्ठित अधिक हैं, उनमें भी बादर की अपेक्षा सूक्ष्म अधिक हैं। व्यक्तिशः प्रत्येक जीव का अधिकतर समय निगोद (सूक्ष्म सप्रतिष्ठित वनस्पति कायिक) में ही कटता है। निगोद से निकलने पर जीव को अधिक से अधिक समय अन्य गतियों में बिताने के लिए दो हजार सागर का मिलता है, जो कि उस निगोद के समय में से सागर में जल बिन्दु के सदृश है। फिर इस दो हजार सागर के काल में भी केवल ४८ भव मानव पर्याय के हैं। सो यह समय भी दो हजार सागर वाले समय में समुद्र में जल बिन्दु वत् है। न मालूम इन ४८ भवों में हमारी यह वर्तमान मनुष्य पर्याय कौन सा भव है? हो सकता है ४८ वाँ ही भव हो, तब यदि इस भव में अपना कल्याण कर लिया तब तो ठीक है, अन्यथा फिर वही निगोद का अनन्त अनन्त अन्ध कूप मिलेगा।

मनुष्य भव ही एक ऐसा भव है जिससे सीधा मोक्ष-द्वार खुलता है। नारकी और देवों के तो संयम का लेशमात्र नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिर्यञ्च गति में संयमांश यद्यपि जागृत हो सकता है, पर बड़ी कठिनता से। मनुष्य भव में ही पूर्ण संयम जागता है, अतएव मनुष्य योनि पाने के लिए देवगण भी तरसते हैं। तप की साधना मनुष्य पर्याय को छोड़कर अन्यत्र नहीं होती, परन्तु जिस नरदेही ने इसे व्यर्थ खो दिया उसका नरदेह पाना व्यर्थ है—

'संजमु विणु णरभव मयल सुएणु'—आत्मा की पहिचान पूर्वक धारण किया गया संयम ही मानव जीवन की सफलता है, परन्तु संयम के अभाव में प्राप्त यह नरदेह भी केवल शून्य है—मनुष्य—वह भी भोग भूमि का नहीं—कर्म भूमि का—पूर्ण स्वातंत्र्य पद पाने का हकदार माना गया है।

अतएव मात्र मनुष्य भव के द्वारा पाने योग्य दुर्लभ संयम का पालन करके भव—सागर से तिरने का मार्ग प्रशस्त करते रहना चाहिए, उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है—

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं, सुइ, सद्धा, संजमम्मिय वीरियं॥

इस संसार में प्राणी के लिये ये चार चीजें ही परम दुर्लभ है—सर्व प्रथम मनुष्य भव का पाना, मनुष्य भव पा भी लिया तो श्रुति जिनागम—का श्रवण कठिन है, वह भी प्राप्त हो गया तो सत् श्रद्धान का पाना अर्थात् 'सम्यक्त्व' का होना कठिन है, यदि सम्यक्त्व भी प्राप्त हो गया, तो संयम रूप रत्न का पाना बड़ा कठिन है। अतएव यदि मनुष्य भव की प्राप्ति द्वारा सम्यक्त्व पूर्वक संयम की अराधना नहीं की, तो मनुष्य जीवन का पाना वृथा ही है। परन्तु जो जीव मनुष्य भव पाकर धर्म को सुनता है, श्रद्धान करता है और संयम में उद्यमी होता है, वह संचित कर्मों को नाश करने में समर्थ होता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माणुसत्तम्मि आयाओ जो धम्मं सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धु संबुडे णिद्धुणे रयं ॥

वही प्राणी, जिसकी आत्मा कपट से रहित सरल परिणामों वाली है, वहीं धर्म श्रवण का अधिकारी है कारण शुद्ध आत्मा में ही रत्नत्रय रूप धर्म ठहरता है और जिस आत्मा में धर्म ठहरता है, वही आत्मा घृत सिंञ्चित अग्नि के समान स्वयं प्रकाशित और प्रवुद्ध होकर ऊर्द्धवंगम करता है—लोकान्त तक पहुंचता है।—

सोही उज्जुय भूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।
णिव्वाणं परमं जाइ घयसित्तिव्व पावए ॥

अतएव अनेक जन्मों की मन्द कषाय रूप तपस्या से प्राप्त इस नर पर्याय को व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। जीवन के एक एक क्षण का का सदुपयोग करना चाहिए। पुण्योदय से जो भी सुख सम्पदा प्राप्त हुई है उसे अप्रबुद्ध केवल भोगों में ही विताता है, वह फिर पाप कर्म का सञ्चय कर 'पुनर्मूषको भव', की कहावत चरितार्थ करता हैं पर जो इस—मनुष्य जीवन को, उत्तम स्वास्थ्य को, पुण्योदय से प्राप्त योग्य सामग्री को—

काना पोंडा पड़ा हाथ यह, चूसे तो रोवे ।
फले अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवे ॥

ऐसा मानता है कि ये सब तो काने गन्ने की भाँति है यदि इनका भोग करेंगे तो कोई लाभ नहीं, पर यदि धर्म कार्य में इन्हें लगाया जायगा, तो अनन्त गुणित फल की प्राप्ति इनके द्वारा हो सकती है, वही इसका सदुपयोग कर सकता है। प्रबुद्ध मानव ही इसके मूल्य को पहचानता है—वह सोचता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नर काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी॥
उत्तम देश, सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना॥

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर का व्रत पालन, शुद्धभाव करना॥
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि-ज्ञान पावे।
पाकर केवल ज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवे॥

और निरन्तर आत्महित में सावधान रहकर बोधिज्ञान पाने के लिये सयत्न रहता है। अकस्मात् प्राप्त हुई इन दुर्लभ मणियों को वह व्यर्थ कैसे खो सकता है। परन्तु इस मनुष्य भव, उत्तम देश, सत्संगति और श्रावक-कुल रूप उत्तम निधियों को पाकर भी उनके मूल्य को न पहचानने वाले असावधान प्राणी के लिए कविवर भूधरदास जी की उद्बोधक वाणी है—

ऐसी श्रावक कुल तुम पाय, वृथा काहे खोवत हो।
कठिन कठिन कर नर-भव पाई, तुम लेखी आसान।
धरम विसार विषय में रांचो, मानी न गुरुकी कान॥
चक्री एक मतंगज पायो, तापर ईन्धन ढोयो।
विना विवेक बिना मति ही को, पाय सुधा पग धोयो॥
काहू शठ चिन्तामनि पायो, मरम न जान्यो ताय।
वायस देखि उदधि में डारयो, फिर पाछे पछताय॥
सात व्यसन आठोंमद त्यागो, करुणा चित्त विचारो।
तीन रतन हिरदय में धार्यो, आवागमन निवारो॥
'भूधर' कहत भविक जनसों हे, चेतन अब तो सम्हारो।
प्रभु को नाम तरन-तारन जपि, करमफन्द निरवारो॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरे जरा सोचने की बात है कि इतनी कठिनता से प्राप्त इन क्षणों को क्या व्यर्थ गवाना ही श्रेष्ठ है ? अथवा आत्म-पुरुषार्थ की उपलब्धि करना श्रेष्ठ है ?

परन्तु हालत यह है कि अमूल्य नर-तन को पाकर भी जीव थोड़ा भी अपना हित नहीं सोचता है ऐसों के प्रति ही पण्डित प्रवर दौलतराम जी ने सोच प्रकट किया है—

बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणी रत रह्यो।
अर्ध मृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे आपनो।

जीवन की तीनों ही अवस्थाओं को व्यर्थ खो दिया। पांचों इन्द्रियों के विषय भोगों में बिता दिया। आत्म-कल्याण में क्षण भर भी नहीं विताया। 'संसार में सुख से रहूँ'—ऐसा सोचकर निरन्तर दुख उठाया। अरे संसार के सुख भी तो पुण्योदय से प्राप्त होते हैं। परन्तु आत्महित की बात तो अलग, शुभ कार्य जो पुण्य वर्धक हैं उन्हें भी नहीं किया। तो संसार का सुख भी उन्हें कहां से मिल सकता है—गुणभद्र स्वामी ऐसे लोगों की हालत पर दुख प्रगट करते हुए कहते हैं—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
फलं नेच्छन्ति पापस्य, पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

मनुष्य पुण्य का फल-सुख सम्पत्ति तो चाहते हैं, पर पुण्य-शुभ कार्यों से दूर रहना चाहते हैं। भगवान् की भक्ति के लिए समय नहीं, पूजा और स्वाध्याय के लिए समय नहीं, उत्तम पात्रों का स्वागत सत्कार करने के लिए समय नहीं, सज्जनों, विद्वानों, धर्मोपदेशकों की संगति में बैठकर धर्म-श्रवण करने को अवसर नहीं, पर सुख जरूर चाहिए; मान प्रतिष्ठा जरूर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए: पाप के फल—दुख के आस्वाद से डरते हैं, पर पापों को यत्न से करते हैं। गप सड़ाका लगाने के लिए, सतरंज और जुआ खेलने के लिए, शिकार खेलने के लिए, अधिक समय है। लोक निन्दित मार्ग पर चलने के लिए पैसा भी है—खेद है ऐसे लोगों के लिए! क्या कहा जाय उनकी बुद्धि को!

आत्म-कल्याण के इच्छुक मानव जीवन को सफल बनाने का उद्देश्य रखने वाले व्यक्तियों के लिये बताया गया है कि उन्हें प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त-प्रातःकाल उठकर पञ्च परम गुरुओं को नमस्कार कर, विचारना चाहिए कि मैं कौन हूँ, मेरा क्या स्वरूप है, मैं कहाँ से आया हूं—

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय वृत्त-पञ्चनमस्कृतिः ।
कोऽहं कीदृक् स्वरूपोऽहं कुतोऽयातेति चिन्तयेत् ॥

ऐसा विचार करने से आत्मा को उद्बोधन प्राप्त होगा आत्म-तत्व के प्रति चिन्तन की रुचि होगी, पापों के प्रति अरुचि और संयम में रुचि जगेगी।

गृहस्थी में रहते हुए भी यदि कोई आत्महित के लिए सदा प्रबुद्ध रहता है तो उसका जीवन सफल है। श्री दौलतराम जी की यह कितनी प्रेरक वाणी है:—

और सबै जग द्वन्द मिटाओ, लौ लाओ जिन आगम ओरी।
है असार जग द्वन्द बंधकर, ये कछु गरज न सारत तोरी॥
कमला-चपला, यौवन-सुरधनु, स्वजन-पथिक-जन-ज्यों रतिजोरी।
विषय-कषाय दुखद दोनों ये, इनतें तोर नेह की डोरी॥
पर द्रव्यन को तू अपनावत, क्यों न तजे ऐसी बुधि भोरी॥
वीत जाय सागर थिति सुर की, नरपर्याय तनी अति थोरी।
अवसर पाय 'दौल' अब चूके, फिर न मिले सागर निधि वोरी॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन पर्व—

भारतीय संस्कृति में पर्व मनाने की बहुत अधिक प्रथा है। पर्व किसी विशेष दिन की स्मृति स्वरूप होता है, जिसका स्मरण हम उस दिन उत्सव मनाकर करते हैं। जैन समाज में भी अनेक पर्व मनाये जाते हैं। कुछ प्रमुख पर्वों का विवरण नीचे दिया जाता है—

दशलक्षण पर्व—यह पर्व जैन सम्प्रदाय में बहुत ही उत्साह से मनाया जाता है। यद्यपि यह पर्व वर्ष में तीन बार आता है, परन्तु विशेतया भाद्रपद मास में ही मनाया जाता है। श्वेताम्बर समाज में इसको भाद्रपद कृष्ण १२ से भाद्रपद शुक्ल ४ तक मानते हैं और दिगम्बर सम्प्रदाय में इसे भाद्रपद शुक्ल पंचमी से १४ तक मनाते हैं। इसे पर्यूषण पर्व भी कहते हैं। यह पर्व राज कहलाता है। इन दिनों धर्म के दश अंगों पर विवेचन होता है। सारा वातावरण धर्ममय होता है, सामूहिक पूजन भजन अत्यधिक दर्शनीय होते हैं। इस पर्व पर समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार व्रत उपवासादि करता है। भाद्रपद शुक्ल १० वीं को सुगन्ध दशमी व्रत होता है, इस दिन समाज का प्रत्येक नर-नारी प्रत्येक मन्दिर में धूप देने को जाता है। चतुर्दशी को अनन्त व्रत मनाया जाता है, पर्व का अन्तिम दिन होने से मन्दिर में अभिषेक पूजन आदि अनेक उत्सव होते हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम रखे जाते हैं, रथयात्रा, जुलूस आदि निकालकर धर्म प्रभावना की जाती है।

क्षमावणी पर्व—यह पर्व दशलक्षण पर्व के उपरान्त उसकी परिसमाप्ति पर आश्विन कृष्ण १ को मनाया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें समाज के व्यक्ति आपस में गत वर्ष की अपनी भूलों की क्षमा याचना करते हैं, आपस में गले मिलते हैं। यह दृश्य बड़ा दर्शनीय रहता है।

दीपावलि—भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष कल्याणक के उपलक्ष में कार्तिक कृष्ण १४ की रात्रि और १५ के दिन मनाया जाता है। इस दिन मन्दिर में निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है। रात्रि में मन्दिर और घर दीपों से जग मगाये जाते हैं। यह दीपों का जलाना वीर प्रभु के प्रमुख गणधर गौतम इन्द्रभूति को केवलज्ञान-ज्योति की प्राप्ति की स्मृति दिलाता है।

दीपावलि पर्व भारत में सभी सम्प्रदायों के लोग मनाते हैं। इस समय मकानों की पूर्ण सफाई होती है। व्यापारी लोग लक्ष्मी की पूजन करते हैं। वहियां आदि की पूजा भी इसी दिन करते हैं, इस कार यह पर्व अनेक प्रकार से मनाया जाता है।

ऋषभ जयन्ती यह पर्व माघ सुदी १० को प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के जन्मोत्सव के उपलक्ष में मनाया जाता है।

महावीर जयन्ती—भगवान महावीर स्वामी के जन्म दिवस चैत्र सुदी तेरस को सभी जैन समाज बड़े उत्साह से विशाल आयोजनों के साथ मनाता है। इस पर्व को मनाने के लिए शासकीय तौर पर भी कई जगह आयोजन होता है। शासन ने इस दिन की आम छुट्टी घोषित कर दी है।

अक्षयतृतीया—यह पर्व वैशाख सुदी ३ को मनाया जाता है। यह वही दिन है, जब भगवान् ऋषभदेव को आहार की क्रिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न मिलने पर छह माह निरन्तर बिना आहार के रहना पड़ा था, और इस दिन महाराज श्रेयांस द्वारा इक्षुके रसका आहार मिला था। इस समय से ही मुनियों को आहार देने की विधि मालूम हुई थी, उसी की स्मृति में यह पर्व मनाया जाता है। इसका जैन धर्म में बहुत अधिक महत्व है।

श्रुत पंचमी पर्व—

यह पर्व ज्येष्ठ शुक्ला ५ वीं को सम्पूर्ण जैन समाज में मनाया जाता है, इस दिन शास्त्रों की पूजन की जाती है। यह वही दिन है, जब दिगम्बर सम्प्रदाय में धीरे-धीरे अंग ज्ञान लुप्त होने की सम्भावना से आचार्य धर सेन स्वामी ने अपने शिष्य पुष्पदन्त और भूत बलि महाराज को सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन कराया, जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने पट्खण्डागम नामक सिद्धान्त ग्रंथ की रचना की। इसी दिन इस महान् ग्रंथराज की रचना समाप्त होने पर भूतवलि आचार्य ने उसकी पूजा की थी। उसी समय से बरावर यह पर्व जैन सम्प्रदाय में मनाया जाता है। इस दिन सरस्वती भवनों के शास्त्रों की सम्हाल की जाती है।

वीर शासन जयंती—

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर को केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर, उनका सबसे पहिला धर्मोपदेश मगध की राजधानी राजगृही के विपुलाचल पर्वतपर प्रातः समय हुआ था। वह दिन श्रावण कृष्ण प्रतिपदा का था, उसी समय से यह पर्व वीर शासन जयंती के नाम से समस्त सम्प्रदायों में हर्ष से मनाया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रक्षा बन्धन—

श्रावण शुक्ला १५ का दिन रक्षा बन्धन पर्व के नाम से मनाया जाता है। यह पर्व भी प्रायः सभी लोग मनाते हैं।

जैन समाज में इस पर्व को विशेष महत्व होने से मनाया जाता हैं। इस दिन विष्णुकुमार मुनि ने ७०१ मुनियों के ऊपर हस्तिनापुर में राजा बलि के द्वारा आये हुये उपसर्ग को टाला था। इसी से यह दिन धर्मरक्षा का दिन है। इस दिन धर्म की रक्षा करने की प्रतिज्ञा स्वरूप मन्दिर में प्रातः ही केशरिया रक्षा सूत्र हाथ में बाँधा जाता है। इस पर्व में बहिन द्वारा भाई को भी राखी बांधने रिवाज है, जो अपने भाई से अपने रक्षा की प्रतिज्ञा कराने का प्रतीक है।

अष्टाह्निका पर्व—

दिगम्बर समाज का यह दूसरा महत्वपूर्ण पर्व है, जिसमें आठ दिन तक धार्मिक वातावरण छा जाता है, यह पर्व वर्ष में तीन बार आता है अषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास के अंतिम आठ दिन मनाया जाता है। इन दिनों सिद्ध चक्र विधान आदि होते हैं। इस पृथ्वी पर आठवां नन्दीश्वर द्वीप है, जिसमें ५२ जिनालय हैं, जिसकी पूजा करने के लिए स्वर्ग से देवगण इन दिनों आते हैं, यह जैन मान्यता है। चूँकि मनुष्य वहाँ तक नहीं पहुंच सकता, अतः वह यहीं उक्त पव को बड़े उत्साह से मनाता है। बड़े-बड़े शहरों में यह पर्व दर्शनीय होता है।

इन पर्वों के आलावा अष्टमी, चतुदर्शी और रविव्रत भी ऐसे पर्व हैं, जो प्रति सप्ताह मनाये जाते हैं। इन दिनों बहुत से गृहस्थ अपनी शक्ति के अनुसार व्रत-उपवास रखते हुए पूर्ण संयम से अपना समय बिताते हैं। ये दिन सप्ताह में अधिक महत्व के होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दश लक्षण पर्व

सम्वाद—

'दश लक्षण' या 'पर्यूषण' पर्व जैन धर्मानुयायी समाज का एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक पर्व है। इन दिनों जैन जन-समुदाय अपने मन्दिरों में बड़े ठाठ-वाट से अपने आराध्य देवकी पूजन-स्तुति आदि करते हैं। सामूहिक रूप से सस्वर पढ़ी जाने वाली पूजा-स्तुतियां मन्दिर के पास से आने जाने वाले लोगों का मन अनायास आकर्षित कर लेती हैं। मन्दिरों की सजावट अपूर्व होती है। शास्त्र पढ़ने और धार्मिक तत्वों का व्याख्या करने के लिये वाहर से विद्वान् बुलाये जाते हैं। यह पर्व दश दिनों तक चलता है। लोग तरह तरह के व्रत उपवासादि रखते हैं, शुद्ध भोजन करते हैं, हरी शाक का उपयोग जैन ग्रहस्थों के यहां इन दिनों नहीं होता है। प्रातः काल से लेकर रात्रि के १० बजे तक पूरा समय व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से धार्मिक कार्यों में ही व्यतीत होता है। इसी पर्व के महत्व को-ब्रह्मचारी की बैठक में बालकों को समझाया जाता है।

पात्र—कमला, सुनील, महेश।

कमला—भैया, माता जी कहती थी 'व्रत' आने वाले हैं। घर की शुद्धि करनी है। रसोई घर में, भोजनालय में, चक्की और ओखली पर नये पाल वाँधना है सो भैया, ये 'व्रत' क्या हैं?

महेश—अरी कमला, तुम नहीं जानती! क्या तुम्हें पिछले वर्ष की याद भूल गयी! जव हम लोग खूब ठाठ-वाट से जिनेन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभु की पूजा करते थे। रात्रि को आरती होती थी, हम लोग माता जी से पैसा लेकर आरती नचते थे। हां! वही पर्व, वही त्योहार 'व्रत' हैं, जिन्हें लोग 'दश लक्षण पर्व' कहते है, कोई उन्हें 'पर्यूषण' पर्व भी कहता है कोई केवल 'व्रत' ही कहता है।

कमला—क्यों भाई इन्हें व्रत क्यों कहते हैं ?

महेश—अरे, इन दिनों लोग व्रत रखते हैं, कोई एक समय ही भोजन करता हैं, उपवास करते हैं कुछ नीरस भोजन करते हैं, हरी शाक तो कोई नहीं लेता। कुछ लोग नमक, दूध घी आदि भी छोड़ देते हैं इसीलिये इन्हें व्रत कहते हैं। इतने में सुनील भी आ जाता है।

सुनील—अरे भैय्या महेश, आज मैं बाजार गया था तो शाक वेचने वाले कुंजड़े आपस में कह रहे थे–'अब माल सम्हल कें लेंना, जैनियों के व्रत आ रहे हैं, नहीं तो सड़-सड़ के बिकेगा।'

महेश—हां भाई, वात तो सच है, उन दिनों एक भी जैन जो शाक नहीं खरीदता। बाजार में शाकके भाव भी गिर जाते हैं। सामूहिक रूप से त्याग का कितना असर होता है, देखो तो !

सुनील—भाई महेश, इन व्रतों का प्रारम्भ कब से हुआ, ये इन्हीं भादों के दिनों में क्यों मनाये जाते हैं और दश दिन तक क्यों ?

महेश—अरे, तुमने तो गहरे प्रश्न किये, अच्छा चलो, इन सबका समाधान श्री ब्रह्मचारी जी से करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुनील और कमला—अच्छा चलो (सब जाते हैं)।

[ब्रह्मचारी जी की द्वितीय बैठक]

ब्रह्मचारी जी—मध्याह्न की सामयिक से निवृत्त होकर बैठे हैं—कमला, महेश, सुनील का प्रवेश—

तीनों—वन्दना महाराज जी!

ब्रह्मचारी जी—दर्शन विशुद्धि, कहो कैसे!

महेश—महाराज व्रतों का महत्व बतलाइये।

कमला महाराज, इन्हें व्रत क्यों कहते हैं—यह तो भैया ने बता दिया, अब बतलाइये इन्हें 'दशलक्षण पर्व' क्यों कहते हैं?

ब्रह्मचारी जी—सुनो कमला और तुम भी सुनील, महेश—धर्म यद्यपि एक ही है पर जिस प्रकार एक ही पेड़ की अनेक शाखाएँ होती हैं वैसे ही धर्म का स्वरूप अच्छी तरह सबकी समझ में आजाय इसलिए उसे दश अंगों में बाँट दिया है—नोट करलो वे अंग हैं—

१ उत्तम क्षमा—क्रोध को जीतना, शक्ति रहते हुए भी दूसरों के अपराधों को क्षमा करना, बैर विरोध को छोड़ना।

२ उत्तम मार्दव—सबको समान समझना, बड़ों की विनय करना धन रूप विद्या आदि का घमण्ड नहीं करना।

३ उत्तम आर्जव—छल कपट छोड़ना, मन-वचन-काय को एक रखना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४ उत्तम शौच—लोभ लालच नहीं रखना, मन-वाणी और शरीर को शुद्ध रखना।

५ उत्तम सत्य—सदा ही सत्य का व्यवहार करना, सच बोलना, हितकारी, मीठे और सत्य से परिपूर्ण वचन कहना।

६ उत्तम संयम—मन और इन्द्रियों को जीतना, समस्त प्राणियों के प्रति रक्षा का भाव रखना। शुद्ध आहार करना।

७ उत्तम तप—इच्छाओं को रोकना, व्रत उपवासादिक रखना।

८ उत्तम त्याग—आहार, औषध, ज्ञान और प्राणरक्षा का दान देना, अच्छे कामों में अपने धन का सदुपयोग करना।

९ उत्तम आकिंचिन्य—संसार की वस्तुओं से ममता हटाना, सन्तोष धारण करना, सादगी से रहना।

१० उत्तम ब्रह्मचर्य- आत्मबल को दृढ़ करना, काम-वासना को जीतना, भोगों में लालसा घटाना।

ये ही धर्म के दश अंग हैं, इन दिनों इन्हीं धर्मों को अपने में दृढ़ करने का अभ्याश किया जाता है अतएव इस पर्व को दश लक्षण पर्व कहते हैं। और इसी कारण यह दश दिनों तक मनाया जाता है।

सुनील—और महाराज, इसे पर्यूषण भी तो कुछ लोग कहते हैं सो क्यों?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मचारी जी—इस पर्व के दिनों में आत्मा को तपों की आग में तपाकर पवित्र बनाया जाता है अतएव इसे 'पर्यूषण' कहते हैं।

कमला—महाराज, इसे भादों मास में ही क्यों मनाया जाता है।

ब्रह्मचारी जी—कमला, लोग धर्म के विषय में भी अपनी सुविधा देखते हैं, वैसे तो इसे एक वर्ष में भाद्रपद, माघ और चैत्र में तीन बार मनाने का विधान है, पर अन्य दिनों में लोग अपने व्यापारिक कार्यों में अधिक व्यस्त रहते हैं, अतएव वर्ष में एक बार भाद्रपद शुक्ला ५ से चतुर्दशी तक मनाते हैं। इन दिनों व्यापार का कार्य मंद रहता है। चातुर्मास के कारण साधु-सन्तों का समागम मिल जाता है, तथा वर्षा के कारण मंदाग्नि होने से उपवासादिक करने में स्वास्थ्य की रक्षा होती है—आदि कारणों से इन्हीं दिनों मनाने की रूढ़ि चल पड़ी है।

श्वेताम्बर समाज में इसे भाद्रपद कृष्ण १२ से शुक्ला चतुर्थी तक ८ दिन ही मनाया जाता है। 'पर्यूषण' यह शब्द प्रायः श्वेताम्बर समाज में ही प्रचलित है। दिगम्बर समाज में इसे 'दशलक्षण' पर्व ही अधिकतर कहा जाता है।

महेश—महाराज, इसका चलन कबसे हुआ?

ब्रह्मचारी जी—ग्रन्थों में इसे अनादि पर्व कहा गया है। और बताया गया है कि प्रलय की शान्ति से जो नयी सृष्टि की रचना हुई तभी से इस पर्व की शुरूआत है। हरी शाक को न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाने की एक भावना यह भी है कि उस नयी सृष्टि का विनास करने को हम तुरन्त तैयार न हों।

कमला—इन व्रतों के दिनों का और भी कोई महत्व है ?

ब्रह्मचारी जी—हां, इसके अन्तर्गत, पुष्पाञ्जलि, सुगन्ध दशमी, रत्नत्रय व अनन्त व्रत आ जाते हैं। पञ्चमी अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी को तो बहुत से लोग पूर्ण निराहार व्रत रखते हैं। सुगन्ध दशमी को धूप खेयी जाती है।

व्रत की समाप्ति पर ठाठ बाट से भगवान का अभिषेक किया जाता है। भगवान की रथयात्रा निकाली जाती है, भगवान् की फूल माला नीलाम की जाती है और सहधर्मी भाइयों से साल भर में किये गये अपराधों की क्षमा माँगी जाती है। मन्दिर की व्यवस्था आगे वर्ष सुचारु रीति से चले इसके लिये व्रत करने के उपलक्ष में शक्ति भर दान दिया जाता है, जिसे 'व्रत भण्डार' कहते हैं।

कमला, सुनील, महेश—धन्य हो महाराज जी ! आपने कृपाकर हमें अपने धर्म के एक महत्वपूर्ण पर्व की पूरी जानकारी दे दी, हम लोग इस वर्ष अच्छी तरह धर्म साधना करेंगे। व्रत रखेंगे और अगली साल के लिए कोई न कोई जीवन सुधारने वाली प्रतिज्ञा ग्रहण करेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चातुर्मास

व्रती, संयमी, साधु-पुरुषों का वर्षाकाल के चार महीनों में एक ही स्थान पर ठहर कर धर्माराधन करना-कराना 'चातुर्मास' कहलाता है। परम अहिंसक महावीर प्रभु का सर्व प्रथम उपदेश श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को राजगृही नगर के विपुलाचल पर्वत पर इन्द्रभूति गणधर की उपलब्धि हो जाने पर हुआ था। अपने तपश्चरण काल में ही उन्होंने 'चातुर्मास' की उपयोगिता का अनुभव कर लिया था। समवशरण चार महीने तक रहा और उनके संघ में चातुर्मास का नियम ही बन गया था। जैन श्रमण साधुओं की चातुर्मास व्यवस्था ने बौद्ध श्रमण साधुओं को बड़ा प्रभावित किया, उन्होंने अपने हृदय में इसकी महत्ता समझी और जाकर अपने गुरु, महात्मा बुद्ध से कहा—"भगवन्, श्रमण निर्ग्रन्थ महावीर के संघ में तो चातुर्मास की व्यवस्था है।' महात्मा बुद्ध ने भी उसकी उपयोगिता समझी और अपने संघ में भी उसे अनिवार्य कर दिया।

परम अहिंसक महावीर प्रभु के धर्म-संघ में तो यह व्यवस्था होनी ही चाहिए थी। कारण वर्षाऋतु में अहिंसक, श्रमण साधकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में अहिंसा महाव्रत के पालन में वाधा आती थी। संघ की व्यवस्था भी उचित रूप से नहीं बनती थी। कारण वर्षाऋतु में—

वर्षा के कारण मार्ग जल से भर जाते हैं, जमीन गीली हो जाती है, उस पर घास उग आती है, कीचड़ मच जाता है त्रस जीवों का संचार बढ़ जाता है, ऐसी स्थिति में साधुओं की ईर्यापथ शुद्धि नहीं बन पाती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सचित्त मार्ग पर अहिंसक साधु कैसे चल सकते हैं।

वर्षाऋतु में हर जगह गृहस्थों को साधुओं के लिये आहारादि देने में भी कठिनाई पड़ सकती थी।

नदी नालों में पूर आने से मार्ग रुक जाते थे अनासक्त श्रमण तपस्वी परावलम्बन तो स्वीकार कर नहीं सकते ।

इन दिनों भ्रमण कर उचित धर्म प्रचार भी नहीं हो सकता, अतएव सावद्य मार्ग पर नहीं चलने वाले श्रमण साधुओं और संघ को भी चातुर्मास की व्यवस्था बड़ी उपयोगी थी। उस समय की परिस्थिति 'चातुर्मास' के ही उपयुक्त थी।

वीर प्रभु का समवशरण विपुलाचल पर्वत पर चार महीने तक रहा था, श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को उनका प्रथम उपदेश हुआ था। श्रावण के महीने से ही वर्षाऋतु का वातावरण तैयार होता है। अतः श्रावण कृष्ण एकम से कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा जब तक मार्ग वर्षाऋतु के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त न हो जाय और सूखकर प्रायः अचित्त न हो जाय तब तक के लिये चातुर्मास की व्यवस्था रखी गयी।

चातुर्मास व्यवस्था साधु लोग बड़े विवेक से ही स्थान चुनकर करते थे। वे ऐसे स्थानों पर ही चातुर्मास योग करते थे जहाँ की –

—श्रावक गण धर्म-मार्ग के प्रति अधिक भक्त हों।

—उनमें उदारता आदि, गुणों का सद्भाव हो।

—जहाँ श्रावकों की संख्या अधिक हो और मुनिराज का ज्ञान, ध्यान तथा धर्म प्रचार रूप कार्य का अधिक से अधिक उपयोग हो सके।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

—जहाँ के श्रावकों में मुनियों के चातुर्मास से प्रमोद की भावना हो।

—जो स्थान धर्म ध्यान में अधिक बाधा कर न हो।

—जहाँ के मार्ग अधिक गीले और कीचड़युक्त न हों, जिससे कि साधुओं को चर्या आदि को निकलने में असुविधा हो।

—जहाँ धर्म-द्वेषी लोग न रहते हों।

—शासन की तरफ से जहाँ किसी उपद्रव की आसङ्का न हो।

—जहाँ दुर्भिक्ष या रोगों का वातावरण न हो।

सब तरह से धर्म-साधन के उपयुक्त स्थानों पर ही श्रमण निर्ग्रन्थ साधु 'वर्षा योग' व्यतीत करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुण्य पावन तीर्थ क्षेत्र

तीर्थ क्षेत्र आत्मसाधना के पवित्र स्थल होते हैं। तीर्थंकरों ने इन्हीं तीर्थ स्थलों को अपनी साधना-भूमि बनाकर निर्वाण प्राप्त किया। संस्कृत में तीर्थ शब्द की परिभाषा **तीयते संसारमहार्णवो येन निमित्तेन तत्तीर्थमिति** की है। जिसका तात्पर्य है जिस साधन से संसार रूपी महान् समुद्र को पार किया जाया उसे तीर्थ कहते हैं। आदि पुराण में भी तीर्थ की परिभाषा **संसाराब्धेरपारस्य तरणे तीर्थ मिष्याते** की गई है। इस प्रकार जिन स्थानों पर तीर्थंकरों ने जन्म, दीक्षा, तप, ज्ञान या मोक्ष प्राप्त किया हो, उन स्थानों को तीर्थस्थान कहते हैं। तीर्थंकरों के अलावा अन्य महापुरुषों ने भी निर्वाण प्राप्त किया हो उन्हें भी तीर्थ मानते हैं।

जैन के तीर्थस्थानों में तीन प्रकार के तीर्थस्थान पाये जाते हैं।

[१] सिद्ध क्षेत्र—जहां तीर्थंकरों के कल्याणक हुये हों, साधुओं ने निर्वाण प्राप्त किया हो, वे तीर्थ स्थान सिद्ध क्षेत्र के नाम से पुकारे जाते हैं। पावन तीर्थस्थल सम्मेद शिखर पावापुर, गिरनार, द्रोण-गिरि, रेशन्दीगिरि आदि सिद्ध क्षेत्र कहलाते हैं।

[२]-अतिशय क्षेत्र—जहां पर कोई अतिशय होता है, कोई धार्मिक चमत्कार होता है, तो उस स्थान को अतिशय क्षेत्र के नाम से पुकारते हैं। पपौरा, अहार, खजुराहो, कुण्डलपुर आदि अतिशय क्षेत्र हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनीय स्थल—कुछ स्थान ऐसे हैं जो दर्शनीय स्थल होने से तीर्थ क्षेत्र कहलाने लगे हैं। जहां मन्दिर मूर्ति आदि अधिक दर्शनीय होती है, उसे तीर्थ क्षेत्र की संज्ञा दे दी जाती है।

आगे कुछ प्रसिद्ध जैन तीर्थ क्षेत्रों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

पावन क्षेत्र सम्मेद शिखर—जैनों का सबसे पवित्र तीर्थस्थान सम्मेद शिखर है, जहां भगवान् ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ और महावीर इन चार तीर्थंकरों को छोड़ २० तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि है। इसके साथ ही असख्यात मुनियों ने इस स्थान से मोक्ष प्राप्त किया है। यह तीर्थस्थान दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों समाजों को समान रूप से पूज्य है। यह तीर्थ स्थान कलकत्ता मार्ग पर पारसनाथ स्टेशन से १८ मील के लगभग दूर है। पहाड़ पर २४ टोकें २४ भगवानों की हैं। नीचे मधुवन में वशाल धर्मशालाऐं एवं मन्दिर हैं। नन्दीश्वर द्वीप की दर्शनीय रचना है।

यह क्षेत्र विहार प्रान्त के हजारीबाग जिले में है। रेल से जाने वालों को पारसनाथ स्टेशन या गिरीडीह स्टेशन उतरना पड़ता है, वहां क्षेत्र की धर्मशालाऐं हैं तथा क्षेत्र तक भेजने की व्यवस्था है इस क्षेत्र का कण-कण पवित्र है। पहाड़ी का दृश्य अत्यन्त रमणीक हैं, पहाड़ी की पूर्ण वन्दना की दूरी १८ मील के करीब हो जाती है चन्द्र प्रभु और पार्श्वनाथ टोंक अधिक कठिन हैं।

पावापुर—विहार प्रान्त में है। यहां भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ था, इससे यह सिद्ध क्षेत्र कहलाता है। तालाब के मध्य एक अत्यन्त सुन्दर मंदिर बना है जिसमें भगवान महावीर के चरण हैं। यहां कार्तिक कृष्ण अमावस्था को जैन जन लाडू चढ़ाने आते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रोणगिरि—पावन तीर्थ क्षेत्र मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में सागर कानपुर मार्ग पर बड़ा मलहरा से चार मील पश्चिम में मलहरा-टीकमगढ़ मार्ग पर प्रथम बस स्टेशन है। यह स्थान दोनों तरफ नदियों से घिरा होने से अत्यन्त रमणीक है। यहां से गुरुदत्तादि मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया था। गांव से दो फर्लांग दूर पहाड़ पर २८ सुन्दर मन्दिर हैं।

पहाड़ी के ऊपर का दृश्य बड़ा सुन्दर है, पूज्य वर्णी जी (गणेशप्रसाद जी) ने इसकी सुन्दरता से प्रभावित होकर इसे अपनी जीवन गाथा में लघु सम्मेद शिखर के नाम से कहा है। गांव में एक संस्कृत विद्यालय धर्मशालाएँ, वर्णी धर्मार्थ औषधालय एवं रसायन शाला भी है, जिसमें शुद्ध औषधियों का निर्माण किया जाता है। पास ही एक सुन्दर कुण्ड है, जिसमें स्वास्थ्यवर्द्धक पेय जल है। इसकी विशेषता यह है कि ठण्ड में पानी गर्म और गर्मी में बहुत अधिक ठण्डा मिलता है। वर्णी जी जब भी यहां रहते थे, इस कुण्ड तरफ भ्रमण किया करते थे।

कुण्डलपुर—मध्य प्रदेश के दमोह जिले में यह अतिशय क्षेत्र स्थित है। दमोह से यहां बसें आती हैं यहां पर कुण्डल के आकार का पर्वत है, जिस पर सुन्दर मन्दिर हैं। इसी से ही संभवतः इसका नाम कुण्डलपुर पड़ा है। यहाँ भगवान महावीर की प्राचीन १० फीट पद्मासन मूर्ति है जो संभवतः अन्य जगह नहीं, इस मूर्ति का पुनरुद्धार १७ वीं शती में छतरपुर के बुन्देला राजा छत्रसाल ने कराया था।

खजुराहो—अतिशय क्षेत्र खजुराहो मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले के पन्ना मार्ग पर वमीठा से ७ मील दूर है। यहां १२ वीं शताब्दी के मन्दिर हैं, जिनकी शिल्पकला दर्शनीय है यहां के जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दिरों में से चार मन्दिरों पर राज्य पुरातत्व विभाग का पटिया लगा है, क्योंकि ये मन्दिर पुरातत्व की दृष्टि से बहुत महत्व के हैं। इन मन्दिरों के दर्शनार्थ सदा ही विदेशी यात्री आते रहते हैं।

अहार—मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ जिले में, टीकमगढ़ से पूर्व में १३ मील दूर यह अतिशय क्षेत्र टीकमगढ़–बल्देवगढ़ मार्ग पर स्थित है। ९ वें मील से, दक्षिण में मदनेश सागर तालाब के बाँध पर से पक्का मार्ग ठीक अहार तक जाती है।

यहां मुख्य दर्शनीय भगवान शान्तिनाथ की १८ फुट ऊंची खड्गासन मूर्ति है, जो प्राचीन है। उसका पालिस खराब हो जाने पर पुनः पालिस कराया गया। मूर्ति की शान्ति और भव्य मुद्रा देखकर दर्शक मंत्र-मुग्ध हो जाता है। संग्रहालय भी है, जिसमें सैकड़ों खण्डित जैन मूर्तियों का संग्रह है। प्राकृतिक रमणीयता के बीच यह भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व, काला एवं संस्कृति का गौरव मय-केन्द्र है। प्राचीन समय में यहाँ एक समृद्ध नगर व प्रसिद्ध धार्मिक केन्द्र था। १२ शती से पहले के शिला लेख यहाँ मिलते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन धर्म के उद्धारक—[१]

[पुरातन आचार्य]

किसी भी जाति, देश, धर्म का आस्तित्व उसके विपुल साहित्य के कारण ही रहता है, क्योंकि साहित्य ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा दर्पणवत जाति, देश और धर्म के अतीतगौरव का ज्ञान होता है। वहीं धर्म सबसे अधिक महत्वशाली होता है जिसमें अच्छा साहित्य हो। किसी भी धर्मका आस्तित्व उसके साहित्य से है। जैन धर्म आज जो हमें इतने विशाल रूप में दिख रहा है तथा उसकी प्रतिष्ठा देश-विदेश में है, जैन-अजैन सभी विद्वान जिसे एक अच्छे धर्म के रूप में मानते हैं, उसका खास कारण है, जैन धर्म में विपुल साहित्य का भण्डार,जो जैन धर्म की अक्षुण्णता को कायम रखे हुए हैं। जैन साहित्य अन्य धर्मों के साहित्यकी अपेक्षा अधिक है।इसकाश्रेय हमारे पूज्य आचार्यों को है, जिन्होंने अपने परिश्रम से अपने मनन और चिन्तन का पूर्ण उपयोग कर सुन्दर, शास्त्रों की रचना कर विश्व को सन्मार्ग दिखाया। उन्हीं जैनाचार्यों की परम्परा में दो चार प्रसिद्ध जैनाचार्यों का परिचय निम्न प्रकार है—

कुन्दकुन्दाचार्य—

वि. स. की २ री शताब्दी में जैन धर्म के महान प्रभावक विद्वान तत्ववेत्ता आचार्य श्री कुन्द कुन्दाचार्य हुए, जिन्होंने जैन तत्वज्ञान सम्बन्धी अपूर्व साहित्यकी रचनाकर साहित्य की अभिवृद्धि की। कुन्दकुन्दाचार्य के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि इन्हें विदेह क्षेत्रस्थ सीमन्धर स्वामी की दिव्य ध्वनि सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य जी का प्रथम नाम पद्मनन्दि था, परन्तु बाद में कोण्डकुन्दपुर के निवासी होने से कोण्डकुन्दाचार्य–कुन्दकुन्दाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इन्होंने जैन तत्वज्ञान से ओत–प्रोत प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार जैसे गम्भीर आत्मज्ञान के परिचायक शास्त्रों की रचना की जिससे आज प्रत्येक मुमुक्षु उनका अध्ययन कर अपना कल्याण कर रहा है। ये शास्त्र जैन अध्यात्म ग्रन्थों में बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं।

इन अनमोल ग्रंथों के अलावा आचार्य श्री ने अनेक प्राभृतों की भी रचना की, आठ प्राभृत उपलब्ध हैं। ये अन्तिम श्रुत केवली भद्रबाहु के शिष्य थे।

स्वामी समन्तभद्र—स्वामी समन्तभद्र वि.स. की ३-४थीं शती में हुए हैं। ये जैनाचार्यों में सबसे अधिक प्रभावक हुए हैं। स्वामी समन्तभद्र को जैन शासन का प्रणेता तथा भावी तीर्थंकर कहा जाता है। अकलंक देव, विद्यानन्दि, जिनसेन, वीरनन्दि आदि प्रसिद्ध आचार्यों ने अपनी ग्रंथरचना के प्रारम्भ में इनका आदर पूर्वक स्मरण किया है।

स्वामी समन्तभद्र को मुनि अवस्था में भस्मक व्याधि हो गई थी, जिससे ये जो भी खाते थे भस्म हो जाता था और फिर क्षुधा उत्पन्न हो जाती थी, इस व्याधि को शान्त करने के लिए ये कांची या काशी के राजकीय शिव–मन्दिर में पुजारी बने जहां भगवान को चढ़ा हुआ सभी नैवेद्य खा जाते थे। जब बहुत समय बाद इनका रहस्य खुला तो स्वयंभू स्तोत्र रचकर जैन शासन का प्रभाव प्रकट किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामी समन्तभद्र के रचे हुए ग्रंथों में आप्तमीमांसा, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, जिनस्तुति-शतक तथा रत्नकरण्ड श्रावकचार उपलब्ध हैं। कुशल तार्किक और कुशल वक्ता होने से। इन्होंने विपक्षियों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था।

अकलंक--अकलंक ई. ६२० से ६८० के समय हुए। ये जैन न्याय के प्रमुख आचार्य थे, प्रकाण्ड-पण्डित, धुरन्धर शास्त्रार्थी और उत्कृष्ट विचारक थे। अकलंक स्वामी समन्तभद्र के उत्तराधिकारी थे। इन्होंने उनके आत्ममीमांसा ग्रंथ पर अष्टशती नामक भाष्य की रचना की। अकलंक की रचनायें दुरूह और गंभीर हैं। इनके अष्टशती, प्रमाणसंग्रह, न्यायविनिश्चय, लघीयस्त्रय और तत्त्वार्थराजवार्तिक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। इनका सिद्धि विनिश्चय प्रकाश में नहीं आया।

विद्यानन्दि--विद्यानन्दि ई. ९ वीं शती के हैं। ये अपने समय के बहुत बड़े विद्वान थे। ये सभी दर्शनों के पारंगत विद्वान थे। इनके रचे हुए ग्रंथ अष्ट सहस्री को अच्छे २ विद्वान भी समझने में कठिनाई अनुभव करते हैं। इसी से इसे कष्टसहस्री कहा जाता है। इन्होंने अष्टसहस्री, आप्त परीक्षा, प्रमाण परीक्षा, पत्र परीक्षा, तत्वार्थ श्लोकवार्तिक और युक्त्यनुशासन टीका नाम के ग्रंथ रचे हैं। ये सभी ग्रंथ दार्शनिक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन धर्म के उद्धारक—[२]

[आधुनिक साधु एवं विद्वान्]

किसी भी धर्म का उत्थान प्रचार और प्रसार उस धर्म के तत्व-चिन्तक आचार्यों साधुओं, और मनीषिय पर निर्भर रहता है। धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार इन्हीं द्वारा होता है, जिससे जन-साधारण धर्म के रहस्य को समझने में समर्थ होता है। जैन धर्म के प्रचार और प्रसार में जैन साधुओं और जैन विद्वानों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उन्हीं के श्रम, त्याग और तपस्या के फल-स्वरूप जैन संस्कृति का संरक्षण हुआ है, इस श्रमण संस्कृति के संरक्षण में योगदान देने वाले कतिपय प्रमुख साधुओं और विद्वानों का परिचय निम्न प्रकार है—

(१) आचार्य शान्ति सागर जी महराज—

जैन संस्कृति के संरक्षण में आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज यथा नाम तथा गुण वाले थे।

आचार्य श्री का जन्म भोज ग्राम (कोल्हापुर) में भीमगौंडा पाटिल की सुयोग्य सह-धर्मिणी सत्यवती देवी की कुक्षि से अषाढ़ वदी ६ वि. स. १९२९ में हुआ था। आपका बचपन का नाम सात गौंड़ा था, आप बचपन से ही धार्मिक प्रकृति के थे, धार्मिक कार्यों में अधिक रुचि लेते थे।

उस समय की रुढ़ि के अनुसार जब सातगौंड़ा की आयु नौ वर्ष की हुई तब इनके माता पिता ने छह वर्ष की एक छोटी सी बच्ची से इनका सम्बन्ध कर दिया। उस समय चूंकि बाल विवाह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथा प्रचलित थी और माता-पिता के बन्धन से सम्बन्ध किया गया, परन्तु ६ माह में ही पिता के घर ही पत्नी का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद माता-पिता एवं सम्बन्धियों ने दूसरा विवाह करना चाहा, परन्तु भला एक बार के बन्धन से मुक्त फिर बन्धन में कैसे बंध सकता था। क्योंकि उसको तो जैन संस्कृति की रक्षा करने हेतु परम दिगम्बर मुनिमुद्रा धारण करनी थी। उसने विवाह बन्धन के प्रस्ताव को ठुकरा दिया और हमेशा के लिये इससे छुटकारा पाने हेतु श्री १०८ दिगम्बर मुनि श्री सिद्धसागर जी से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया।

आपके घर में कपड़ा का व्यापार होता था, परन्तु आपकी रुचि तो आध्यात्म की ओर थी। अतः आप घर से ममत्व छोड़ शीघ्र ही विरागी बनना चाहते थे। परन्तु पिता के जीवन में वे अपनी इच्छा की पूर्ति न कर सके। पिता की मृत्यु के बाद वि. सं. १९७० में जब ये ४१ वर्ष के थे, इन्होंने श्री १०८ मुनि सिद्ध सागर जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर, घर को तृण के समान त्याग दिया। ७ वर्ष बाद ही वि. स. १९७७ में फाल्गुन सुदी तेरस को १०८ मुनि सिद्ध सागर जी से ही मुनिदीक्षा ली। इसी समय आपका नाम शान्तिसागर रखा गया।

आपने घोर तपश्चरण द्वारा अपनी आत्मा को अत्यधिक निर्मल बनाया। आपके उत्तम चरित्र से प्रभावित होकर अनेक मुमुक्षुओं ने ब्रह्मचर्य के व्रत लिये, ऐलक-क्षुल्लक और मुनि दीक्षायें प्राप्त कर, एक संघ बनाया। संघ ने आपको आचार्य और समाज ने चारित्र चक्रवर्ती की महत्वपूर्ण पदवी प्रदान की।

आपने कठोर तपश्चर्या की। कई बार अनेक उपसग आये, परन्तु आपके निर्मल चरित्र और कठोर तपश्चरण के बल से सभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसर्ग दूर होते गये। कई बार इनके पास सर्प और सिंह आये, परन्तु आपकी शान्त मूर्ति को देख क्रूरता के परिणामों वाले ये जीव शान्त भाव से उनके पास बैठे रहते कोई नुकसान नहीं पहुंचा पाते थे। द्रोणगिरि में जिस समय आचार्य श्री का पदार्पण हुआ पर्वत की गुफा में महराज की सामायिक के समय सिंह आया, परन्तु उनका कुछ नहीं बिगाड़ सका। उनके पास चुपचाप बैठकर चला गया। इस प्रकार अनेक क्रूर परिणाम वाले जीव आचार्य श्री की पवित्र अन्तरात्मा से पवित्र होते थे।

आचार्य श्री ने जैन धर्म के प्रचार हेतु पूरे भारत में भ्रमण किया और जगह-जगह अपने धर्म का उपदेश देकर जैन--अजैन जनता के सामने अहिंसा-सत्य आदि सिद्धान्तों को समझाया। आपका उपदेश बहुत प्रभावशाली होता था। संस्कृति के संरक्षण हेतु आपने अनेक संस्थाओं की स्थापना भी की इनके विहार से भारत में मुनियों का जहां भी विहार बन्द था, हमेशा के लिये खुल गया।

आपने जैन धर्म के प्रचार और प्रसार में अपना पूर्ण जीवन व्यतीत किया। अन्त समय सल्लेखना पूर्वक द्वितीत भाद्रपद शुक्ल २ रविवार दिनांक १८।१०।१९५५ ई. को ८४ वर्ष की अवस्था पूर्ण कर सावधानी पूर्वक आत्मा और परमात्मा का स्मरण करते हुये आप कुन्थलगिरि में ६–५० पर भौतिक शरीर को त्याग, हमेशा के लिये अजर अमर हो गये।

आचार्य श्री ने अपने जीवन में संसार को आदर्श जीवन का पाठ पढ़ाया। आप जैसा प्रतिभा वान्, उत्तम चरित्र, प्रभावक दिगम्बर आचार्य बहुत समय से नहीं हुआ था। इसमें संदेह नहीं की आचार्य श्री अमर पद को प्राप्त हुए होंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) पूज्य मुनि गणेशकीर्ति जी महाराज—

(वर्णी जी महाराज)

आध्यात्मिक सन्त, ज्ञान की साक्षात् मूर्ति, धर्म-प्रचारक पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराज को जन्म देने का शौभाग्य उसी बुन्देलखण्ड की पुण्यधरा को प्राप्त हुआ जिस ने अनेक तेजस्वी वीरों, समाज सुधारकों और देश भक्तों को जन्म दिया। वर्णी जी देशभक्त, धर्मवीर और समाज सुधारक महान् व्यक्ति थे।

झांसी जिले के हंसेरा ग्राम में, आश्विन कृष्ण ४ वि. सं. १९३१ को इस महान् आत्मा का जन्म हुआ था पिता श्री हीरालाल और मां उजियारी बहू थीं। आप बचपन से ही प्रखर बुद्धि के, उदासीन प्रकृति के व्यक्ति थे। इनकी रुचि धर्म की तरफ अधिक थी, ७ वर्ष की अवस्था से विद्यार्जन प्रारम्भ किया, विवेक-बुद्धि, प्रतिभा-शालिता और विनय सम्पन्नता से आप अपने गुरुओं को अधिक प्रिय थे।

वर्णी जी असाटी [वैश्य] वंश में उत्पन्न हुए थे, परन्तु आप का झुकाव बचपन से ही जैन धर्म की तरफ था। मकान के पास ही जैन मंदिर होने से रात्रि में प्रवचन सुनने जाया करते थे। १० वर्ष की अल्प अवस्था में ही एक दिन प्रवचन से प्रभावित होकर आजीवन रात्रि भोजन त्याग की प्रतिज्ञा ली, इसी दिन से आप जैन धर्म को मानने लगे। पन्द्रह वर्ष की आयु में मिडिल परीक्षा उत्तम श्रेणी से पास की, परन्तु साधनों के अभाव से अपना अध्ययन आगे न बढ़ा सके अठारह वर्ष की आयु में आप का सम्बन्ध कर दिया गया। विवाह के बाद ही पिता जी का स्वर्गवास होगया, परन्तु पिता जी का अन्तिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपदेश-देता ! जीवन में यदि सुख चाहते हो तो पवित्र जैन धर्म को न भूलना"– ये ही वाक्य सदा उनके हृदय-पटल पर अंकित हो गये। गृहस्थी की चिन्ता से कारीटोरन, मदनपुर, जतारा आदि स्कूलों में अध्यापन किया, परन्तु आप की इच्छा अभी पढ़ने की ही थी। सौभाग्य की बात कि वि. सं. १९५० में सिमरा में महिला रत्न विदुषी सि. चिरौंजाबाई से भेंट हुई। देखते ही उनके स्तन से दुग्ध धारा वह निकली और भवान्तर का मातृस्नेह उमड़ पड़ा। उसी समय बाई जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा "भैया—चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, तुम हमारे धर्म पुत्र हो।' बाई जी का सहारा पाकर वर्णी जी प्रफुल्लित हुए, अब धर्म-माता ने अपने कर्तव्य के पालने हेतु इन्हें अध्ययन करने के लिए हेतु जयपुर, बम्बई, मथुरा, खुरजा बनारस आदि भेजा। विद्याध्ययनार्थ जाते समय रास्ते में सामान चला जाता है अनेक कठिनाईयां आती हैं यहां तक कि भरण पोषण हेतु पैसा न रहने पर मजदूरी का कार्य भी करना पड़ता है परन्तु वे अधीर नहीं होते साहस के साथ सभी कठिनाईयों को झेलते हुए आगे बढ़ते हैं, अनेक कठिनाइयों के बीच विद्याध्ययन कर न्यायाचार्य परीक्षा सर्व प्रथम उत्तीर्ण होते हैं।

विद्वत्ता से बड़े थे ही, संयम की साधना ने आपको और भी बड़ा पूज्य बना दिया।

वि. सं. २००१ में दशमी प्रतिमा और फाल्गुन कृष्ण ७ वि. सं. २००४ में क्षुल्लक हो गये।

पूज्य बाबा जी ने पैदल ही बुन्देलखण्ड से सम्मेद शिखर तक की यात्रा की।

वर्णी जी सच्चे देश-भक्त, समाज-सुधारक, एवं ज्ञान-प्रचारक थे आपने जबलपुर नगर में १९४५ ई. में आजाद हिन्द फौज की सहायतार्थ अपने चादर को नीलाम किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णी जी का प्रमुख कार्य ज्ञान-प्रचार था। बुन्देलखण्ड में भ्रमण कर आपने देखा कि ज्ञान का प्रचार कम होने से समाज अज्ञ है। धर्म का वास्तविक मर्म कोई नहीं समझता अज्ञान अन्धकार को मिटाने हेतु आपने श्री गणेश दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय सागर, श्री गुरुदत्त दि. जैन संस्कृत विद्यालय द्रोणगिरि, श्री पार्श्वनाथ दि. जैन विद्यालय वरुवासागर, श्री शान्तिनाथ दि. जैन पाठशाला अहार, श्री पुष्पदन्त विद्यालय शाहपुर, शिक्षा मंदिर जवलपुर, गणेश गुरुकुल पटनागंज, श्री द्रोणगिरि क्षेत्रीय गुरुकुल मलहरा आदि अनेक संस्थाओं की स्थापना की, शिक्षा के केन्द्र वाराणसी में सब से बड़ा विद्यालय स्याद्वाद महाविद्यालय स्थापित किया और विशेषता यह कि स्वयं ही इसके प्रथम स्नातक बने।

पूज्य बाबा जी मानवता की साक्षात् मूर्ति थे। आपत्तियों से टक्कर लेना, विपत्ति में कर्म न छोड़ना, दूसरों का दुःख दूर करने के लिए असहायों की सहायता, अज्ञानियों को ज्ञान और शिक्षार्थियों को सब कुछ देना आपके जीवन का व्रत था। छात्रों के तो आप मार्ग-दर्शक परम सहायक थे। समाज में आज जितने बड़े विद्वान मौजूद हैं, प्रायः पूज्य श्री से उपकृत हैं इसमें संदेह नहीं। आपकी सबसे बड़ी विशेषता स्मरण शक्ति की है, व्यक्ति को एक बार देख लेने पर कई साल बाद भी उसके सामने आने पर पहिचान लेते। भाषा इतनी मधुर की व्यक्ति सुनते गद्गद् हो जाता। आपका पेटेन्ट शब्द था 'भैया'। विचित्र आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय विचार धाराओं का समन्वयात्मक स्वागत जितनी कुशलता के साथ वर्णी जी कर सके, अन्य किसी भी जैन सन्त के जीवन में यह विशेषता देखने को नहीं मिलती। उनके दर्शनार्थ राष्ट्रसन्त विनोवा भावे भारत-रत्न-स्वर्गीय डा. राजेन्द्र प्रसाद जी आये और दर्शन कर कृत-कृत्य हुए। पूज्य श्री के चरणों में रहकर जीवन बिताने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए बहुत से मुमुक्षु ईशरी में रहते थे। आपसे व्रत लेना, आपकी सेवा करने का अवसर मिलना सौभाग्य समझते थे। पुस्तक के लेखक को तो पूज्य श्री का आशीर्वाद प्राप्त था ही, अन्त समय तक उनकी चरणों की सेवा का अवसर उन्हें प्राप्त रहा।

ऐसा समाज सुधारक ज्ञानसूर्य, धर्मवीर, ५-१०-६१ की मध्य रात्रि में हमेशा के लिए अमर हो गया। अन्त समय समाधि मरण धारण किया। मृत्यु के समय भी आप सचेत थे भगवान का स्मरण करते २ प्राण त्यागे। आपके संयम का प्रभाव कि अन्त समय तक नेत्र पूर्ण ज्योतियुक्त रहे, चश्मा नहीं लगा, दांत पूरे, रहे, स्मरणशक्ति तो अपूर्व थी ही। अन्त समय मुनि व्रत धारण किये थे। आपके अभाव की पूर्ति आज ऐसा कोई सन्त नहीं जो कर सके।

पूज्य वर्णी जी के विषय में निम्न उद्गार उनके यथार्थ गुणों को व्यक्त करने में कुछ समर्थ है—

घनीभूत जग की पीड़ा,
तुममें आकर सब द्रवित हुई।
करुणा की शीतल धारा से,
यह जगती सब स्नात हुई।
तुमने अलसाये प्राणों में,
चेतना-मंत्र सा फूँक दिया।
तमसाव्रत जीवन-मन्दिर को,
तुमने पावन आलोक दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूज्य वर्णी जी का एक सार गर्भित पत्र

यह पुण्य- पत्र प्रातः स्मरणीय पूज्य बावा जी ने अन्तिम समय सल्लेखना धारण करने के पहले मुझे लिखा था, जो मेरे लिए एक महान् थाती है। इसमें इस दिव्य आत्मा की अन्तः साधना कितनी बलवती थी इसका प्रत्यक्षी करण पाठकों को मिल सकेगा।

ब्र नाथूराम।

श्री महानुभाव,

कल्याण भाजन !

हमारा आपका सम्बन्ध अतिकाल से चला आ रहा है। सम्बन्ध में अल्प भी शान्ति का आस्वादन न था, परन्तु मानने में जो थ सो आप भी जानते हैं। मेरा तो दृढ़तम विश्वास है कि जो यह पर सम्बन्ध है सो ही संसार का विधाता है। अब हमारा शरीर हमसे पृथक (सम्बन्ध त्यागने) के सम्मुख है और उसी के द्वारा हमारा आपका सम्बन्ध था। अतः हमारी आपसे अन्तिम सूचना है जो आप इस सम्बन्ध को त्यागो। अब तक इस संबंध में यदि हमारे विभाव परिणामों द्वारा आपको हर्ष-विषाद हुआ हो उस हर्ष-विषाद में मुख्यता तो आपके विभाव परिणामों की थी, हमारी चेष्टा तो एक सहकारिणी रही होगी। ऐसा वस्तुस्वरूप जान अपनी विकृत परिणति जान मध्यस्थ रहना, हमारी विभाव परिणति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जान क्षमाशील आत्मा को फिर विभाव के जाल में न फंसाना, अपनी परिणति को अपनी मानकर फिर न फंसना, अनादि से आई अज्ञानता को संज्ञी होकर असंज्ञी की तरह पर्याय भाव को अपना मानकर फिर वही अज्ञान दशा के पात्र मत बनो। अब तो संज्ञी अवस्था के पात्र बनकर ऐसा उपाय करो जो इस संसार में न आना पड़े। केवल पर की प्रकृति देखकर मोह जाल के मध्य मत फँसो। अद्यावधि हमने पर को ही द्वेषी माना, अथवा जिससे राग हुआ उससे प्रसन्नता का पारावार न रहा।

अन्यथा जो दशा हुई सो सर्व की अनुभूति ही है इत्यादि। अब हमारा नोकर्म हमारे अनुकूल नहीं तो अन्य क्या अनुकूल होंगे। क्षमा शीलता ही उपादेय शान्तिमय है।

अ. शु. चि.

गणेश वर्णी

मणुयत्तणु दुल्लहु लहिविभोयहं पेरुउ जेण।
इंधणकज्जें कप्पयरु मूलहो खंडिउ तेण॥

—दुर्लभ मनुजत्व को पाकर जिसने उसे भोगों में प्रेरा, उसने इन्धन के लिए कल्पतरु को मूल से काट डाला।

—योगीन्द्र देव।

-:❀❀:-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) पं गोपालदास जी बरैया—

विद्वत् शिरोमणि पं. गोपालदास जी बरैया का जन्म आगरा में वि. सं, १९२३ को हुआ था आपके पिता श्री लक्ष्मण दास जी थे। पिता का स्नेह बचपन में ही समाप्त हो गया था। बाल्यावस्था से इनमें धार्मिक रुचि नहीं थी। जैन धर्म की रुचि आप में श्रीमान् पं. मोहनलाल जी अजमेर के कारण आयी, उनके पास वे जैन ग्रंथों का अध्ययन करने लगे। यहां आपने ६–७ वर्ष तक रह कर जैन पाठशाला में लघु कौमुदी, जैनेन्द्र व्याकरण, और न्याय दीपिका का अध्ययन किया।

पं. जी ने कई जगह अपना स्वयं का धंधा, एजेन्सी आदि का कार्य प्रारम्भ किया। सोलापुर, बम्बई आदि स्थानों पर धंधा कर मोरेना ही वापिस आकर अपना धन्धा प्रारम्भ किया।

पं. जी सार्वजनिक क्षेत्र में बम्बई प्रवास से आते हैं इस समय आपको पं. धन्नालाल का सहयोग प्राप्त होता है उनके सहयोग से ही सभी कार्य करते हैं। पं. जी ने पं. धन्नालाल जी के सहयोग से मार्गशीर्ष शुक्ला १४ सं. १९४९ को बम्बई में दिगम्बर जैन सभा की स्थापना की। आपके प्रयत्नों से ही भारत वर्षीय दि० जैन परीक्षालय की स्थापना हुई। जैन समाज का प्रमुख साप्ताहिक जैनमित्र पत्र दि. जैन सभा बम्बई की ओर से निकालना शुरू किया, जिसका सम्पादन आपने बड़ी योग्यता और कुशलता से किया। आपके सम्पादकत्त्व में जैनमित्र का अत्यधिक प्रचार हुआ। आपके श्रम का ही यह परिणाम है कि जैनमित्र अभी तक चल रहा है। आप उसकी जड़ों को पूर्ण बलिष्ठ कर गये थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपने बहुत समय तक बम्बई प्रान्तिक सभा का मंत्री रहकर बड़ी कुशलता, श्रम और निर्मल भावना से कार्य किया।

आपके पास पठित विद्या-मात्रा कम थी, फिर भी उच्चकोटि के विद्वान थे। आपने सतत् अध्ययन से अपने ज्ञान को बढ़ाया था। जीवन भर छात्र रहे और छात्र के समान अध्ययनशील रहे। न्याय और धर्मशास्त्र के उच्चकोटि के विद्वान थे, शास्त्रार्थ में तो आपसे जैन विद्वान ही नहीं अजैन विद्वान भी हार मानते थे।

आपकी स्मरण शक्ति बड़ी विलक्षण थी। व्याख्यान देने में आप बहुत चतुर थे, लगातार तीन-तीन घन्टे तक व्याख्यान देना आपको साधारण बात थी। आप सुप्रसिद्ध लेखक भी थे जैनसिद्धान्त-दर्पण, सुशीला उपन्यास और जैन सिद्धान्त प्रवेशिका ये तीन ग्रंथ रचे, जो जैन साहित्य में अपना खास महत्व रखते हैं।

आपका चरित्र उज्ज्वल था। अपने व्यापार धन्धे में सत्य और अचौर्य व्रत का पूर्ण रूप से पालन करते थे।

पं. जी का रहन सहन पुराने ढंग का था। आप में उत्साह पूर्वक कार्य करने की भावना बहुत अधिक थी। निर्भीकता आपकी विशेषता थी।

समाज सुधारक भी आप थे। दस्सा पूजाधिकार का समर्थन कर आपने उन्हें पूजा का अधिकार दिलाया। इसमें आपने समाज के कतिपय सेठों, विद्वानों का भी मुकाबला किया।

पं. जी की प्रतिष्ठा का सबसे बड़ा कारण उनकी निःस्वार्थ सेवा और परोपकारशीलता की भावना थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी विद्वत्ता एवं सेवाभाव के कारण ग्वालियर राज्य की तरफ से आपको मोरेना में आनरेरी मजिस्ट्रेट का पद प्राप्त हुआ था। साथ ही वहां के चेम्बर आफ कामर्स और पंचायती बोर्ड के सदस्य भी रहे।

आपकी विद्वत्ता को देखते हुए बम्बई प्रान्तिक सभा ने आपको 'स्याद्वाद-वारिधि', जैनतत्व प्रकाशनी सभा इटावा ने 'वादीभ गज केसरी', कलकत्ते के गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज के विद्वानों ने 'वाचस्पति' की सम्मानित उपाधि प्रदान की।

आपने जैन सिद्धान्त के अध्ययन हेतु मोरेना में 'गोपाल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय' की स्थापना की, जिसने आज तक सैकड़ों जैन विद्वानों को जैन सिद्धान्त का ज्ञान दिया। यही आपका सही स्मारक है। २० शदी के आप अद्वितीय विद्वान थे। पं. जी चैत्र सुदी ५ सं. १९४७ को स्वर्गस्थ हुए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) बैरिस्टर चम्पत राय जी—

जैन धर्म का विदेशों में प्रचार करने वाले श्री चम्पतराय जी का जन्म देहली में हुआ था, पिता लाला चन्द्रामल थे। माता पिता की आप एकमात्र सन्तान थे। इसके पहिले कई पुत्र और पुत्रियां हुई पर स्वर्गवासी हो गयीं, इससे आप पर माता-पिता का बहुत अधिक प्रेम था। ६ वर्ष की अवस्था में ही आपकी मां स्वर्गवासिनी हो गई इससे आप बचपन से ही मातृस्नेह से वंचित हो गये।

आपको सोहनलाल बांकेलाल ने गोद लिया था। आपकी मां अत्यन्त धार्मिक थीं उन्ही के अनुरूप आप भी धार्मिक रुचि रखते थे।

आपने अपनी शिक्षा में प्रतिदिन उन्नति करते हुए इग्लेंन्ड से बैरिस्टरी पास की। आपका विवाह देहली के सुप्रसिद्ध वकील लाला प्यारेलाल जी की सुपुत्री के साथ सम्पन्न हुआ था।

आप अपने कार्य में अत्यधिक दक्ष थे। फांसी के अभियुक्तों को तो आप बचाने में बहुत अधिक कुशल थे, इसी से आपके पास फांसी वाले मुकद्दमें ज्यादा आते थे। आप में एक विशेषता थी कि मुकद्दमें में बहुत कम पैसा लेते थे। अतः जनता और वकीलों में सर्वाधिक लोकप्रिय थे।

आप स्वाभिमानी थे तथा दूसरों के स्वाभियान की रक्षा भी करते थे। एक बार हरदोई के जिला जज द्वारा छोटे वकील का अपमान करने पर ११ माह तक आपने कोर्ट का बहिष्कार कर दिया। और विजय प्राप्त कर ही संतोष किया उसी समय से 'चाचा जैन' कहलाने लगे।

जैन धर्म की तरफ रुमी— आपका सबसे अधिक सम्बन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने ससुर के भाई रंगीलाल जी से था। उनकी आकस्मिक मृत्यु से आपको अत्यधिक चोट पहुंची उसी समय से आप विरक्त से रहने लगे। उस समय स्वामी रामतीर्थ के अंग्रेजी अध्यात्म ग्रंथ पढ़ने से आपका झुकाव वेदान्त तरफ गया। जिससे वेदान्त की पुस्तकें लिखना प्रारंभ किया। १९१३ई० में आपका देवेन्द्रकुमार जी आरा से परिचय हुआ। इन्होंने उन शंकाओं का निवारण जो वेदान्तों के अध्ययन से नहीं हो पाता था, जैन धर्म के अध्ययन से बताया। उस समय से आपने जैन धर्म का अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन प्रारंभ किया उसी समय से आप पूर्ण जैन हो गये आपका अध्ययन इतना गहरा था कि आपके सामने कोई भी वाद विवाद करने वाला टिक नहीं पाता था।

कार्य—१९२२ में आप लखनऊ दि० जैन महासभा अधिवेशन के सभापति बनाये गये। आपने इसे सुधारने के लिये खूब मेहनत की जैन गजट की स्थिति भी सुधारने का प्रयत्न किया, परन्तु कुछ व्यक्तियों के विरोध करने पर आप महासभा से अलग हो हो गये और जनवरी में दिगम्बर जैन परिषद को जन्म दिया, परिषद की स्थापना का श्रेय आपको ही है।

पावन तीर्थ क्षेत्र सम्मेद शिखर की रक्षा लन्दन प्रिवी कौंशिल में आपने अपने ही द्रव्य से की-ऐसा था आपका तीर्थ प्रेम। जैन ला का निर्माण कराकर जैन मुनियों के विहार पर लगे प्रतिबन्ध को हटवाया। कुड़ची के अत्याचारों को पार्लियामेंट में भेजा। जैन पुरातत्व की खोज, तुलनात्मक नये जैन साहित्य का निर्माण, विदेशों में जैन धर्म के प्रचार और प्रसार हेतु-जैन धर्म पर प्रभावशाली सारगर्भित व्याख्यान देना, लन्दन में ऋषभ जैन लायब्रेरी की स्थापना आपके प्रमुख कार्य थे। आपने समाज सेवार्थ तैयार हुए विद्यार्थियों को सतत बढ़ाया। आप के उपर्युक्त कतिपय कार्य जैन धर्म के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखे रहेंगें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षु. चिदानन्द जी महाराज

बुन्देलखण्ड के सन्तों में पूज्यवर्णी जी (गणेशप्रसाद जी वर्णी) के बाद दूसरा स्थान क्षु. चिदानन्द जी महराज का है। वर्णी जी के समान ही आप एक सच्चे सुधारक हैं। ज्ञान के प्रचार-प्रसार हेतु पाठशालाओं की संस्थापना में सदा संलग्न हैं। क्षु. चिदानन्द जी महाराज बुन्देलखण्ड में ज्ञान प्रसार में पूज्य वर्णी जी के पूरक ही हैं। इनके दीक्षा गुरु वर्णी जी थे वर्णीजी के ये अनन्यतम शिष्य रहे है। इन दोनों सन्तों ने बुन्देलखण्ड में जो विद्या प्रसार किया वह उनकी स्मृति वनाये रखने के लिये काफी है।

क्षु. चिदानन्द जी को पहिचानना बहुत आसान है दुबला पतला शरीर, परिग्रह से रहित ध्यान-चिंतन ही एक मात्र जिनका लक्ष्य है। भोजन में जिनकी बिलकुल भी रुचि नहीं। स्वाद रहित भोजन ही जो हमेशा करते हैं। सभी प्रकार के आडम्बर से रहित हैं व अपने प्रचार से जो कोसों दूर रहते हैं। यही कारण हैं कि आप अपने जीवन के सम्बन्ध में कोई भी जानकारी नहीं देते।

पूज्य क्षु. जी का जन्म बुन्देलखण्ड के छतरपुर जिलान्तर्गत धनगुवाँ नामक ग्राम में, जो श्री १००८ सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि से ४ मील की दूरी पर है हुआ। बचपन में इनका नाम दामोदर था पिता का नाम जवाहरलाल जी था। बाद में ये आजीविका वश दरगुवाँ आकर रहने लगे। अध्ययन साधारण था। युवावस्था में घर का कार्य भी सँभाला। घर में जो धन्धा होता था उसे ही किया। परन्तु आप बचपन से ही उदासीन वृत्ति के थे अतः व्यापार में मन न लगाने से निरन्तर घाटा उठाते रहे। कुछ समय वाद व्यापार धन्धा छोड़ ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्दोर में श्री ब्र, विदुषीरत्न भूरीबाई जी के संम्पर्क में आये और तभी से त्यागी हो गये। इनको वैराग्य की तरफ लाने का श्रेय भूरीबाई जी को है। ये कुछ समय तक इन्दौर आश्रम में रहकर बड़नगर अनाथलय में गृह प्रबन्धक रहे। थोड़े समय बाद कार्य छोड़कर इन्दौर आ गये। यहां आपका सम्पर्क ब्र. कुन्जीलाल जी से हो गया।

इन्दौर के बाद आपने बुन्देलखण्ड का भ्रमण कर जगह जगह ज्ञान प्रचार हेतु विद्यालय स्थापित किये। उस समय आपने दो अन्ध विद्यालय एवं २४ धार्मिक पाठशालाएँ कुल २६ पाठशालाएँ स्थापित कीं।

बुन्देलखण्ड के भ्रमण समय में ही द्रोणगिरि में पूज्य वर्णी जी से सम्पर्क हुआ और इसके बाद कुछ समय तक पूज्य श्री वर्णी जी के साथ भ्रमण करते रहे।

आपने जैन साहित्य का प्रचार करने के उद्देश्य से देहली में रहकर सस्ती जैन ग्रंथ माला की स्थापना की। अनेक उपयोगी धार्मिक ग्रंथ प्रकाशित कर सस्ते दामों पर समाज को देकर महान उपकार किया।

आप कानजी स्वामी के सम्पर्क में भी आये सोनगढ़ रहकर उनके प्रवचनों का लाभ लिया। सन् १९५५ में द्रोणगिरि गजरथ में समय यहां आये और तब से आप यहां ही रहने लगे।

ज्ञान प्रचार की इतनी अधिक लगन कि जहां भी आप जाते हैं वहां के स्त्री-पुरुषों बच्चों को मोक्षशास्त्र, उपयोगी भजन स्तुतियां व छहढ़ाला अवश्य ही याद करा देते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपने द्रोणगिरि, नयनागिर, अहार पपौरा और शाहगढ़ में व्रती आश्रमों की स्थापना की। अतिशय क्षेत्र को नवागढ़ को प्रकाश में लाने का श्रेय आपको ही है।

आज जैसे निस्पृह, परमार्थी, लोकेषणा से दूर, ज्ञान-पिपासु साधु कम ही मिलते हैं। समाज का कर्तव्य है कि इस सन्त का उनके उपकारों को देखते हुये उचित अभिनन्दन करे। आप अभी लगभग ७० वर्ष के हैं।

वास्तविक जमीन तो यह है कि इन्सान एकान्त में शक्ति और महानता बटोरता रहे और फिर सांसारिक कार्मों को योग्यता के साथ पूरा करने में इनको व्यय करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव–विभाव परिणति

[आत्मा के तीन उपयोग]

अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग—

संसार में मनुष्य अनेक प्रकार के काम करते दिखाई देते हैं। उन कार्यों में जो अशुभ कार्य होते हैं, वे अशुभोपयोग के निमित्त से होते हैं, जो शुभ कार्य होते हैं, वे शुभोपयोग के निमित्त से होते हैं और जो मोक्ष सुखसाधक कार्य होते हैं, वे शुद्धोपयोग के निमित्त से होते हैं। यद्यपि ये तीनों उपयोग एक ही आत्मा के हैं परन्तु जिस तरह का निमित्त मिलता है उसी तरह का कार्य करने के लिए आत्मा प्रेरित होता है।

शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों अशुभ हैं। शुभोपयोग से (मंद कषाय से) स्वर्गादिक और अशुभोपयोग से नरकादिक प्राप्त होते हैं, परन्तु हैं दोनों ही संसार के कारण। एक स्वर्ण की बेड़ी है तो दूसरी लोहे की। दोनों हैं बेड़ियाँ ही। परन्तु इन दोनों से भिन्न जो कषाय रहित तीसरी वस्तु है वह है शुद्धोपयोग, जिसके अन्दर न तो शुभ और अशुभ विकल्प है और न किसी प्रकार की आकुलता है। वह तो एक निर्विकल्पभाव है। सम्यग्दृष्टि अशुभोपयोग से सदा बचे रहने की आकांक्षा रखता है। यद्यपि वह शुभोपयोग, पूजा दानादि करता है परन्तु अन्तरङ्ग से इन्हें करना नहीं चाहता। यहां तक कि अन्तरंग से मोक्ष से भी स्नेह नहीं करता। स्नेह को बन्धन का कारण मानता है। वह सदा सोचता है—

१. आत्मा शरीर से भिन्न है—

मनुष्य को एक शुद्ध चेतना का ही अवलम्बन है। वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टंकोत्कीर्ण—टंकी से उत्कीर्ण-फूल के समान एक शुद्ध भाव है। वह निर्विकार एवं निर्विकल्प एक शुद्ध ज्ञानघन है। उसमें किसी भी प्रकार की संकरता नहीं। बाह्य में अवश्य दोनों (पुद्गल और जीव) का एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध हो रहा है, पर किसी का एक प्रदेश भी किसी में प्रविष्ट (दूसरे रूप में) नहीं होता। जैसे चार तोला सोना है और उसमें चार तोले चाँदी मिला दी, इस तरह वह आठ तोले की चीज बन गई। अब देखो, बाह्य में सोना और चाँदी बिल्कुल मिली हुई दीखती है, पर विचारो-सोना अलग है और चाँदी अलग है। सोने का परिणमन सोने में हो रहा है और चाँदी का परिणमन चांदी में। सोने का एक चावल चाँदी में नहीं जाता और चाँदी का एक चावल सोने में नहीं आता। वैसे ही आत्मा अलग है और पुदगल अलग है। आत्मा का परिणमन आत्मा में हो रहा है और पुद्गल का परिणमन पुद्गल में। आत्मा का चतुष्टय जुदा है और पुद्गल का चतुष्टय जुदा है। आत्मा की चेतना पुद्गल में नहीं जाती और पुद्गल की जड़ता आत्मा में नहीं आती। पर व्यवहार में देख लो, एक सी दीखती हैं। और जब उस सोने चाँदी को तेजाब में डाल दिया तो सोना सोना रह जाता है, चाँदी चाँदी रह जाती है। वैसे ही तत्त्व-दृष्टि से विचारो तो आत्मा आत्मा है और पुद्गल पुद्गल है। कोई का किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं। चेतन में जड़ का क्या काम है? अब देखिये शरीर पर कपड़ा पहिना तो क्या कपड़ा शरीर में प्रवेश कर गया? उस जीर्ण वस्त्र को उतार कर दूसरा नवीन वस्त्र पहन लिया। वैसे ही आत्मा चौरासी लाख योनियों में पर्याय-मात्र बदल लेता है। कोई कहे कि इस तरह तो आत्मा त्रिकाल शुद्ध हुआ। उसमें कुछ बिगाड़ भला होता ही नहीं, चाहे आप कुछ भी करो, पर ऐसा नहीं है। नय-प्रमाण से पदार्थों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप को समझने का यत्न करो। द्रव्य दृष्टि वह त्रिकालाबाधित शुद्ध है पर वर्तमान पर्याय उसकी अशुद्ध ही माननी पड़ेगी। अन्यथा संसार किसका ?

२. शुद्धोपयोग प्राप्त होने पर शुभोपयोग की आवश्यकता नहीं

पूजा करते भगवान् से यही तो कहते हो –

"तव पद मेरे हियमें, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहे प्रभु, जबलौं प्राप्ति नमुक्ति पद की हो॥"

भगवन्! तेरे चरण मेरे हृदय में निवास करें और मेरा हृदय तेरे चरण–कमल में, परन्तु कब तक? जब तक निर्वाण की प्राप्ति न हो। यदि आज ही निर्वाण हो तो उसकी सफल साधना के लिये—

"शास्त्रों का हो पठन, दर्शन, लाभ सत्संगति का।
सद्वृत्तों का सुयश कह कर दोष ढाकूँ सभी का॥
बोलूँ प्यारे वचन हित के आपका रूप ध्याऊँ।
सेऊँ तबलौं चरण जिनके मोक्ष जबलौं न पाऊँ॥

हे भगवन्! जब तक मोक्ष को प्राप्त न करूँ तब तक शास्त्र का अभ्यास, जिनेन्द्र देव की सेवा और अच्छी संगति मिले। सद्वृत्ति है जिनकी ऐसे पुरुषों का गुणगान करूँ, पराये दोषों के कहने में मौन हो जाऊँ। सुन्दर हित–मित–वचन बोलूँ। पर वह कब तक? जब तक मोक्ष न हो जाय। इससे मालूम पड़ता है कि उस शुद्धोपयोग में शुभोपयोग की भी आवश्यकता नहीं है। अरे, तभी तक सीढ़ी चढ़ूँ न, जब तक शिखर पर न ही पहुंचे। शिखर पर पहुंच गये तो फिर सीढ़ियों की क्या आवश्यकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. अशुभोपयोग निवृत्ति के लिए शुभोपयोग आवश्यक है:

सम्यग्दृष्टि का लक्ष्य केवल शुद्धोपयोग में ही रहता है। अशुभोपयोग की निवृत्ति के लिए वह पूजा-दानादि में प्रवर्तन करता है। जब तक शुद्धोपयोग की प्राप्ति नहीं हुई तब तक शुभोपयोग रूप ही प्रवर्तता है। यदि आज भी शुद्धोपयोग की प्राप्ति हो जाय तो आज ही शुभोपयोग छूट जाये। यद्यपि शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों हेय हैं परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि हम शुभोपयोग न करें, शुभोपयोग करो इसका कौन निषेध करता है? शुभोपयोग को त्यागने से शुद्धोपयोग नहीं होता, किन्तु शुभोपयोग में ही जो मोक्षमार्ग की कल्पना कर रक्खी है, उसके त्याग (और रागद्वेष की निवृत्ति) से शुद्धोपयोग होता है और वही परिणाम मोक्षमार्ग का साधन है।

४. मोक्षसुख प्राप्ति के लिए शुद्धोपयोग आवश्यक है :

अशुभोपयोग निवृत्ति के लिए शुभोपयोग आवश्यक बताया है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि शुभोपयोग से ही मोक्ष सुख भी प्राप्त हो जायगा।

शुभोपयोग द्वारा प्राप्त इन्द्रियाधीन सुख वास्तविक सुख नहीं है, परन्तु करें क्या, ऊँट को कड़ुआ नीम ही अच्छा लगता है, वह गन्ने को बुरा समझता है। शुभोपयोग को ही मोक्ष का कारण मान बैठता है। मोक्ष सुख का साक्षात् कारण केवल शुद्धोपयोग है। शुभोपयोग में रहकर ही यदि मुक्ति चाहो तो कदापि प्राप्ति नहीं हो सकती। मुक्ति प्राप्ति के लिए शुद्धोपयोग का आश्रय ग्रहण करना होगा। इसका दृष्टान्त ऐसा है, जैसे कोई मनुष्य तीर्थ यात्रा को गया। चलते-चलते वृक्ष की छाया मिल गई। वहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसने किंचित विश्राम किया। यहां से चलकर वह अपने अभीष्ट स्थान पर पहुंच गया। फिर वह कहता है कि मुझे छाया ने यहां पहुंचा दिया। अरे छाया ने यहां नहीं पहुंचाया, पहुंचाया तो उसकी चाल ने। छाया केवल निमित्तमात्र हुई। वैसे ही शुभोपयोग ने मोक्ष नहीं पहुंचाया।

५. सम्यक्त्वी का लक्ष्य शुद्धोपयोग :

सम्यक्त्वी भगवान के दर्शन करता है, पर उस मूर्ति में भी वह अपने शुद्ध स्वरूप की झलक पाता है। हम भगवान के दर्शन करते हैं तो हमें उनके दर्शन, ज्ञान और चारित्र ही तो रुचते हैं और है क्या ? क्योंकि जो जैसा अर्थ चाहता है उसी अर्थी के पास जाता है। जो धन का अर्थी होगा वह धनिकों की सेवा करेगा। वह हम सरीखों के पास क्यों आवेगा ? और जो मोक्षार्थी होगा, वह भगवान की सेवा करेगा। हमें भगवान के दर्शन, ज्ञान और चारित्र रुचते हैं, तभी तो हम उनके पास जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वी का लक्ष्य केवल शुद्धोपयोग रहता है, लेकिन फिलहाल वह शुद्धोपयोग पर चढ़ने के लिए असमर्थ है, इसलिए शुभोपयोग रूप प्रवर्तता है। यदि शुभोपयोग से स्वर्गादिक की प्राप्ति हो जाय तो इसमें उसके लक्ष्य का तो दोष नहीं है। देखिये, मुनि तपश्चरणादिक करते हैं जिससे उन्हें स्वर्गादिक मिल जाता है। पर तप का कार्य स्वर्ग की विभूति दिलाना तो नहीं है। उसका काम तो मुक्ति लाभ कराना है। चूंकि उस तप से वह मुनि शुद्धोपयोग की भूमि को स्पर्श नहीं कर सका इसलिए शुभोपयोग द्वारा स्वर्गादिक की प्राप्ति हो गई। जैसे किसान का लक्ष्य तो बीज बोकर धान्य उत्पन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना है पर उसके घास-फूसादि की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है। एतावत् शुभोपयोग होने से स्वर्गादिक मिल जाता हैं।

६ अत्याशक्ति पाप का कारण है पुण्यबन्ध नहीं :

कुछ लोग समझते हैं—'पुण्य-बन्ध नरक का कारण है, क्योंकि पुण्य से विषय सामग्री जुटती है और विषयों के मिलने से भोगने की इच्छा होती है, भोगने से अशुभ कर्म-बन्ध पड़ता है और इस तरह नरक जाना पड़ता है। पर वस्तुतत: यह बात नहीं, पुण्य नरक का कारण नहीं है। पुण्य का काम विषय-सामग्री जुटा देना मात्र है परन्तु तुम्हारी पदार्थ के भोगने में तो कोई आपत्ति नहीं पर उसमें लिप्त मत हो जाओ। अत्याशक्ति ही नरक की जननी है विषय को अन्न की तरह सेवन करो। यदि अन्न ज्यादा खा लिया जाय तो अजीर्ण हो जाता है, उसी तरह विषयों का अधिक सेवन करोगे तो मरो तपेदिक में। बुलाओ डाक्टर को। देखो आचार शब्द है, उसमें 'अति' लगा दो तो 'अत्याचार' बन जाता है।

७. इसलिए मूर्छा छोड़ो :

यदि अत्याशक्ति या अत्याचार से बचना चाहते हो तो तुम्हारी जिन पदार्थों में रुचि है, ग्रहण करते ही उन्हें छोड़ दो। क्योंकि मूर्छा ही का नाम परिग्रह है। तुम्हारी भोजन में रुचि है तभी तो खाते हो। मां को बच्चे से मूर्छा है इसलिए तो लालन पालन होता है। इस लंगोटी से हमें मूर्छा है तभी तो रखे हैं। तुम्हें घर-गृहस्थी से मूर्छा है तभी तो फंसे हो। यदि मूर्छा नहीं है तो फिर हो जाओ मुनि। एक मुनि हैं, उन्हें मूर्छा नहीं है इसलिए लंगोटी संभालने की आवश्यकता नहीं है। संभालने वाली चीज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थी वह तो मिट गई। एक लंगोटी ऐसी है जो मोक्ष नहीं होने देती, सोलह स्वर्ग से आगे नहीं जाने देती।

अतः वह चीज जब तक बनी है तभी तक संसार है। जहाँ तक परपदार्थों से मूर्छा हटेगी उतनी ही स्वात्मा की ओर प्रवृत्ति होगी। लोग कहते हैं कि जितने धनाढ्य पुरुष हैं, उन्हें बड़ा सुख होगा। मैं तो कहूँगा कि उन्हें हमसे भी ज्यादा दुख है। उन पर जिस परिग्रह का भूत सवार है उससे वे तीन काल में भी सुखी नहीं हो सकते। मनुष्य के जितना जितना परिग्रह बढ़ता जायगा उनका उतना दुख भी दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता जायगा और जितना कम होगा उतना ही सुख झलकेगा। अतः यदि मोक्ष की ओर रुचि है, सुख की कामना है तो परिग्रह कम करने का प्रयत्न करो।

८. इच्छाओं का दमन करो—

परिग्रह तब तक नहीं घट सकता जब तक इच्छाओं का दमन न हो।

एक मनुष्य ने भूखे को रोटी का दान किया। नंगे को कपड़ा दिया, निराश्रय को आश्रय दिया और उसे सुख हुआ। वह सुख उसे कहां से हुआ? सुख तो उसे अवश्य हुआ। उस सुख का वह अनुभव कर रहा है। तो वह सुख उसका अन्तरंग से उमड़ा। उसने बिना किसी स्वार्थ के परोपकार बुद्धि से ऐसा किया जिससे उसे इच्छाओं—कषायों की मंदता करनी पड़ी, इसीलिए उसे सुख हुआ। तो पता चला कि जब इच्छाओं—कषायों का पूर्ण अभाव हो जाय और यदि उसे विशेष सुख मिले तो इसमें आश्चर्य की कौनसी बड़ी बात है? जितनी मनुष्य के पास इच्छाएं हैं उसके लिए उतने ही रोग हैं। एक इच्छा की पूर्ति हो गई तो वह रोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ देर के लिए शान्त हो गया और उसने अपने को सुखी मान लिया। पर परमार्थ दृष्टि से विचारो ! क्या वह सुखी हो गया ? आज सुबह रोटी खाई, शाम को फिर खाने कीं जरूरत पड़ गई। इससे मालूम होता है कि इच्छाओं में सुख नहीं है। अपितु इच्छाओं में दुख ही है। जितनी जिसके पास इच्छाएँ हैं उतना ही उसे दुख है। जिसकी एक इच्छा कम हो गई, वह सुखी है परन्तु जिसके एक मात्र लंगोटी की इच्छा रह गई, वह उससे भी ज्यादा सुखी है और जिसके पास कुछ भी इच्छा न हो दिगम्बर हो जाय वह उससे ज्यादा सुखी है। बस परिग्रह त्याग का मतलब ही होता है—इच्छाओं को कम करना। संसार में ही देख लो, राजा की अपेक्षा एक सन्त ज्यादा सुखी है, अतः हमारी समझ में तो यही आता है कि जिसने अपनी इच्छाओं को वश कर लिया वही सुखी है।

मूर्च्छा का त्याग वा इच्छाओं के दमन के लिए केवल परिणाम पलटने की आवश्यकता है, क्योंकि उन्हीं की विचित्रता है। परन्तु मनुष्य के परिणामों के पलटने का कोई समय नियत नहीं; न मालूम किसके कब भाव पलट जाये, कोई नहीं कह सकता।

चक्रवर्ती छः खण्ड का अधिपति था। पर जब विरक्त हुआ तो सारी विभूतियों को लात मार दी कि फिर मुँह फेर कर नहीं देखा। परिणामों में जब विरक्तता समा जाती है तो दुनियाँ की ऐसी कोई शक्ति नहीं जो मनुष्य के हृदय को पलट दे—उसे विरक्त होने से रोक ले। इसीलिए कहा है—"सम्यक् परिणामों की सबलता मुक्ति रमा से मिलाने वाली दूती है।"

९. क्रोधादि कषाय व रागादि विभावों पर विजय करो—

मनुष्य के लिए एक शुद्धात्मा का ही अवलम्बन है उसी के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए देखो ही श्रेष्ठ प्रयास है और परिणामों में जितनी चञ्चलता होती है वह तो मोहोदय की कल्लोलमाला है। उस आत्मावलम्बन में कोई काम क्रोधादि विकारी भाव नहीं। यदि क्रोध आत्मा का होता तो फिर क्यों कहते कि हमसे गलती हो गई, क्षमा करो। इससे मालूम होता है कि वह तुम्हारी आत्मा का विभाव भाव है।

१०. चाण्डाल का परिवार—

एक मेहतरानी किसी स्थान पर झाड़ू लगा रही थी। निकट ही एक साधु बैठा था। झाड़ू लगाते समय कुछ धूल के कण उस साधु पर भी पड़े। वह तुरन्त ही क्रोधित हो गया और बोला—"ऐ मेहतरानी क्या करती है ?"

वह बोली "झाड़ू लगाती हूँ"

साधु ने उत्तेजित स्वर से कहा—तुझे दिखता नहीं है ?

मेहतरानी ने ऐंठते हुए कहा—"मुझे तो दिखता है ?"

साधु आपे से बाहर हो उठा—"अरी बड़ी चाण्डालिनी है ?"

मेहतरानी ने व्यंग में कहा—"हाँ मेरा ही परिवार तेरे घर में बैठा है ?"

साधु ने कहा—"क्या बकती है मेरे घर में तेरा परिवार है ?"

मेहतरानी ने गर्व से कहा—मैं जो कहती हूँ ठीक कहती हूँ।"

साधु हठ पूर्वक पूछने लगा—"कैसे ? कहाँ है तेरा परिवार ?"

इतने में दस पाँच और आदमी इकट्ठे हो गए। दोनों में खूब वाद-विवाद हुआ। अन्त में उस मेहतरानी ने कहा—'चाण्डाल क्रोध, राग, द्वेष, मोह, माया जो तुम्हारे घट में बैठा वह मेरा परिवार है। अन्तरात्मा को टटोलो। कषाय जीत नहीं सकते, रोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़ नहीं सकते, माया से मुँह मोड़ नहीं सकते तो इस ढोंगी वेष को छोड़ो।

वस्तुतः आज जिन्हें चाण्डाल कहा जाता है वे चाण्डाल नहीं। चाण्डाल का परिवार तो यह क्रोधादि कषाय और रागादि विभाव हैं।

क्षमा कहीं शास्त्रों में नहीं रखी है। वह तो आत्मा की वस्तु है। आत्मा की वस्तु आत्मा में ही मिल सकती है। केवल क्रोध छोड़ने की आवश्यकता है। क्रोध छूटा कि शेष विभाव स्वयं छूट जावेंगे। चाण्डालिनी का परिवार अपने आप घर छोड़ना आरम्भ कर देंगे। जरा से प्रयत्न की आवश्यकता रह जाएगी।

आत्मा को शुद्ध स्वभाव में लाने की आवश्यकता नहीं है बल्कि क्रोधादि कषाय और राग द्वेषादि विभाव भावों को मिटा दो, आत्मा अपने आप स्व-स्वभाव में आ जायगी।

इस प्रकार स्वात्मा के शुद्ध स्वरूप की भावना करता हुआ सम्यग्ज्ञानी आगामी अनन्त संसार के कारण भूत कर्मबन्धन में नहीं पड़ता है। नये व पूर्वबन्ध करने जो असनाएल देकर खिरते ही, उनको यों चुटकियों में भाग लेता है। इस तरह यह संसारी पथिक मुक्ति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता हुआ अपनी मञ्जिल का मार्ग तय कर लेता है और सदा के लिए शाश्वत सुख में मग्न हो जाता है।

आचार्यों ने निश्चय और व्यवहार का अपनी-अपनी शैली से निरूपण किया है। मैं तो यह समझता हूँ कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल— ये छह द्रव्य हैं। उनमें पुद्गल द्रव्य तो इन्द्रिय के द्वारा ज्ञान में आता है और धर्म, अधर्म,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकाश और काल—ये चार द्रव्य आगम गम्य हैं। हम यहां पर दो द्रव्यों की चर्चा करना चाहते हैं जो प्रत्यक्ष हैं। पुद्गल तो इन्द्रियजन्य ज्ञान से प्रत्यक्ष हैं और आत्मा सुख, दुःख, ज्ञानादि गुणों के द्वारा जाना जाता है।

आत्मा की दो अवस्थाएँ हैं—संसारावस्था और मुक्तावस्था। इनमें से मुक्तावस्था का तो हमको प्रत्यक्ष नहीं, किन्तु संसारावस्था का प्रत्यक्ष है। हमें निरन्तर जो राग–द्वेषादि विभावों का अनुभव हो रहा है उसी का नाम संसार है।

यद्यपि हमको निरन्तर राग-द्वेष का अनुभव होता है परन्तु सर्वथा नहीं। कभी राग-द्वेष के अभाव में जो अवस्था होती है उसका भी अनुभव होता है। जैसे कल्पना कीजिए कि हमको रूप देखने की इच्छा हुई और जैसा रूप देखने का हमारा भाव था वैसा ही वह देखने में आया तो उस समय हम शान्ति और सुख में मग्न हो जाते हैं। विचार कीजिए जो शान्ति हुई वह रूप देखने से हुई या रूपविषयक देखने की इच्छा के जाने से हुई? यदि रूप देखने से हुई तब हमको निरन्तर रूप ही देखते रहना चाहिए सो तो होता नहीं किन्तु हमारी जो रूप विषयक इच्छा थी वह चली गई, अतः सुख व शान्ति का कारण इच्छा का अभाव है। इसका कारण न विषय है और न इच्छा ही है। इससे यह सिद्धान्त निकला कि रागादिक परिणाम ही दुःख के कारण हैं और इनका अभाव ही सुख का कारण है। इसलिए जहाँ पर सम्पूर्ण रागादिकों का अभाव हो जाता है वहीं आत्मा को पूर्ण शान्ति मिलती है और उसी अवस्था का नाम मोक्ष है। अतएव जिन्हें मुक्तावस्था की अभिलाषा है उन्हें यही प्रयत्न करना चाहिए कि नवीन रागादि उत्पन्न न हों और जो प्रवीन हों वे रस देकर निर्जर जावें। केवल गल्पवाद से यह हल न होगा। अनादि काल से जो पर पदार्थों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनाने की प्रकृति पड़ गई है तथ प्रत्येक के साथ जो व्यवहार में अभरुचि रखते हो, पञ्चेन्द्रियों के विषयों में अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहे हों, निरन्तर किसी को अनुकूल तथा किसी को प्रतिकूल मानकर संसार के कार्य कर रहे हो, इनसे पीठ दो और शुद्ध जीव द्रव्य का विचार करो, अनायास अपने अस्तित्व का परिचय हो जावेगा। जिससे उत्पन्न आनन्द का आपस्वयं अनुभव करोगे।

आज तक यही सोचते आयु बीत गई—आत्मा क्या पदार्थ है? इनके लिए प्रथम तो विद्याभ्यास किया, अनन्तर विद्वानों के द्वारा अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया, विद्वानों के समागम में प्रत्येक अनुयोग के ग्रन्थों की मीमांसा की, अनेक धुरन्धर वक्ताओं के भाषण सुने, अनेक तीर्थ-यात्राएँ कीं, बड़े-बड़े चमत्कार सुनकर मुग्ध हो गये तथा अनेक प्रकार के तपश्चरणकर शरीर को लक्कड़ बना दिया परन्तु अन्त में बात यही निकली कि आत्मज्ञान होना अति कठिन है और यह कहकर सन्तोष कर लिया कि ग्यारह अंग के पाठी भी जब तत्त्वज्ञान से शून्य रहते हैं तब हमारी कथा ही क्या है? यह सब अज्ञान का विलास है। यदि परमार्थ से विचारो तब यह तो तुम्हें ज्ञात है ही कि हम को छोड़कर शेष पदार्थ चाहे वह चेतन हों, चाहे अचेतन हों, चाहे मिश्र; "हम" से सब भिन्न हैं। जैसे आप यही तो कहते हैं—यह मेरा बेटा है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पिता है, यह मेरी मां है। यह तो नहीं कहते मैं बेटा हूँ, मैं बाप हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं मां हूँ। इससे सिद्ध हो गया कि आप उनसे भिन्न हैं। इसी प्रकार अपने से अतिरिक्त जितने पदार्थ हैं, यही व्यवस्था उनके सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

अब रह गया निज शरीर, जिसके साथ आत्मा एक क्षेत्रावगाही हो रहा है सो यह भी भिन्न वस्तु है। जैसे देखिए—किसी ने किसी के साथ विसम्वाद किया और विसम्वाद में अपने मुख से दूसरे को गाली दी और थप्पड़ भी मार दी। तब वह बोला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

—"भाई अब रहने दो, जितना हमारा अपराध था उसका दण्ड आपने दे दिया। मैं आपको इसका धन्यवाद देता हूँ। अब आगे आपका अपराध नहीं करूँगा। अब शान्त हो जाइए।" इस वाक्य को सुनकर गाली और थप्पड़ देने वाला एकदम शान्त हो गया और विचार करने लगा—"भाई सा० ! आपने मेरा बहुत उपकार किया, मैंने बड़ी भारी अज्ञानता से काम लिया कि आपको गाली दीं और थप्पड़ भी मारी।" अब विचारिए गाली देने वाला मुख है या आत्मा ? मुख तो शब्दोच्चारण में कारण हुआ, क्रोध की उत्पत्ति जिसमें हुई थी वही तो आत्मा है। इसी तरह थप्पड़ मारने में हाथ निमित्त हुआ, थप्पड़ मारने का भाव जिसमें हुआ वही वही आत्मा है। यदि अपराधी मुंह और हाथ होता तब इनको दण्ड देना उचित था सो वे तो अपराधी हैं नहीं, अपराधी तो आत्मा है। यही तो आत्मा है जो इन कार्यों में अंतरंग से कलुषित होता है।

यदि हम चाहें तो हर कार्य में परसे भिन्न आत्मा का का अनुभव कर सकते हैं। इसके लिये बड़े-बड़े शास्त्रों और समागमों की आवश्यकता नहीं। आत्मज्ञान तो चलते-फिरते खाते-पीते, पूजन-स्वाध्याय करते समय सहज ही हो जाता है किन्तु हम उस ओर दृष्टि नहीं देते। हमारी दृष्टि पर की ओर रहती है जैसे किसी ने किसी से कहा—कौवा आपके कान ले गया तो यह सुनकर वह कौवे के पीछे तो दौड़ता है किन्तु अपने कान पर हाथ नहीं रखता। न कौवा कान ले गया और न आत्मा पर में है। अपनी ओर दृष्टि देने से अनायास आत्मज्ञान हो सकता है परन्तु हम अनादि से परको आत्मीय मानने वाले उस तरफ लक्ष्य नहीं देते। यही कारण है कि दर-दर दीन की तरह भटकते फिर रहे हैं। यह दीनता इसी समय मिट जावे यदि अपनी ओर लक्ष्य हो जावे।

[श्री पूज्य वर्णी जी के प्रवचनों से]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोजन-शुद्धि ।

धर्म का लक्ष्य नैतिक जीवन का निर्माण करना है । जो धर्म मनुष्य को नैतिकता-सदाचार-सद्व्यवहार की ओर नहीं ले जाता उसे धर्म कैसे कहा जा सकता है ? सदाचार की प्रवृत्ति के लिए सात्विक-पवित्र विचारों का हृदय में आना जरूरी है । पवित्र विचारों का हमारे हृदय में सञ्चार हो इसके लिए शुद्ध सात्विक आहार लेना चाहिए । योग्य कारणों से ही योग्य कार्य की उत्पत्ति होती है यह माना हुआ सिद्धान्त है । भोजन के विषय में भी यही बात है ।

जैसा भोजन किया जायगा तदनुकूल ही हमारे शरीर और विचारों का निर्माण होगा । कहावत है—जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन जैसा पीवे पानी वैसी बोले वानी' । यह बात तो प्रत्यक्ष अनुभव में भी आती है कि किसी दिन हम अधिक मात्रा में अधिक गरिष्ठ भोजन कर लेते हैं तो उस दिन आलस्य सताने लगता है । अधिक चरपरा भोजन खा लेने से स्वभाव में भी तीखा पन आ जाता है । अतएव हमें ऐसा ही भोजन करना चाहिए जो हमारे शरीर और मन के ऊपर अनुकूल प्रभाव डाले । मांस मदिरा आदि को आहार रूप से ग्रहण करने वालों तथा सड़ा-गला भोजन लेने वालों की प्रकृति में कुछ अन्तर अवश्य ही देखा जाता है । वे अधिक क्रूर, विलासी या व्यभिचारी देखे जाते हैं ।

मन पर प्रभाव डालने की दृष्टि से भोजन तीन प्रकार का होता है—

[१] तामसिक, [२] राजसिक और [३] सात्विक ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तामसिक भोजन जो भोजन पर-प्राण-पीड़न का विचार न कर अनर्गल रूप से बनाया गया हो। जिसमें मांस, मदिरा आदि प्रमुख हों, जिनका रस बनकर शरीर में क्रोध, लोभ, ईर्ष्या द्वेष आदि दुर्भावनाओं को जन्म दे, शरीर में रक्त विकार आदि के रोग उत्पन्न करे, जिस भोजन की प्राप्ति के लिए दूसरे प्राणियों का वध करना पड़ा हो अथवा चोरी, अपहरण, धोखा, दगा आदि जिनसे विचारों में हीनता आई हो ऐसे कार्यों से उत्पादित अर्जित भोजन तामसिक भोजन है। तामसिक भोजन के प्रभाव से चित्त में क्षोभ, अविवेक, ईर्ष्या और अपध्यान उत्पन्न होते हैं। कषायों की तीव्रता का प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है और शरीर में कम्पन, आवेग, अधैर्य, रक्त-विकार या रक्तात्पता रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तामसिक वृत्ति वाले अपने लिए ही नहीं अपने पड़ोसियों के लिए भी दुःख के कारण बनते हैं। अपनी अधोगामिनी मनोवृत्तियों से वे अपराध, हिंसा, हत्या, व्यभिचार, धोखा देना आदि की ओर बढ़ते हैं और समाज में अपराधों की प्रवृत्ति ऐसे लोगों से बढ़ती है।

राजसिक भोजन—जो भोजन मानसिक-शारीरिक शक्ति को बनाये रखने मात्र के लिए न लिया जाकर रसनेन्द्रिय की परवशता से लिया गया हो, जिसके खाने से आलस्य और प्रमाद बढ़े, विलासिता की ओर मन दौड़े ऐसा भोजन राजसिक भोजन है। जिह्वास्वाद के लालच में पड़कर अथवा आलस्य के कारण आज राजसिक भोजन की प्रवृत्ति अधिक बढ़ गयी है, होटलों, मिष्ठान्न-भण्डारों, खोमचों की अधिकता राजसिक भोजन की वृत्ति का ही फल है। यदि ये जिह्वा-लोलुपी थोड़े समय के लिए बाजारू भोजन में उपयोग में आने वाली सामग्री तथा उसके बनाने की विधि का विवेक पूर्वक विचार करें तो एक दिन ही जिन्दगी भर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए उसका त्याग कर दें। सड़ा घुना अन्न, सड़ी तरकारियां, मिलावटी मसाले, अशुद्ध पानी और अविवेक पूर्वक अशुद्ध शरीर से बनाने की क्रिया इन सबको देखकर घृणा आये बिना न रहेगी। इतने पर इनमें इतना खर्च होता है कि ऐसे भोजन का व्यसनी घर चौपट कर देता है, चोरी और धोखेबाजी की प्रवृत्ति उसकी बढ़ जाती है।

सात्त्विक भोजन—जो भोजन हमारे मन-वाणी-शरीर और विचारों पर अनुकूल प्रभाव डाले। जिसके ग्रहण करने से सात्विक विचारों का उदय हो, क्षमा, दया संयम धैर्य, सहानुभूति आदि मानवीय गुणों की वृद्धि जिसके द्वारा हो, जो हमारे मनको सदा प्रसन्न स्वस्थ और स्फूर्तिमय बनाये रखे जिससे मनमें सदा उत्साह बना रहे, कार्य क्षमता में कमी न आवे ऐसा भोजन सात्विक कोटि में आता है। न्याय की कमाई से अर्जित अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार मानसिक और शारीरिक पवित्रता से तैयार किया गया अन्नाहार ही सात्विक भोजन है। सात्विक भोजन की गारण्टी यह है कि उसमें अधिक आडम्बर न हो, मानसिक बौद्धिक और शारीरिक क्षमता को बनाये रखना ही उसका उद्देश्य हो। इन्द्रियों की अधीनता न हो अपितु इन्द्रियां अपने अधीन हों।

जैन धर्म की आधार शिला नैतिक जीवन का निर्माण है अतएव हमारा मन अनैतिकता-असत् आचरण-की ओर न बढ़े इसके लिए जैनाचार में भक्ष्याभक्ष्य पर पर्याप्त विचार किया गया है और विचार ही नहीं किया गया आचरण रूप में प्रवृत्ति करने लिए भक्ष्याभक्ष्य पर पर्याप्त नियम भी बनाये गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभक्ष्य विचार—उपर्युक्त भोजनों में तामसिक और राजसिक भोजन अभक्ष्य बतलाया है। मानवता का आदर करने वाले व्यक्ति सदा सात्विक भोजन को ही ग्रहण करते हैं।

जैनाचार में पवित्र जीवन का निर्माण करने की दिशा में पञ्च प्रकार अभक्ष्य भोजन निषिद्ध बतलाया है।

पञ्च-अभक्ष्य--

[१] त्रसहिंसा कारक, [२] बहु स्थावर विघातक, [३] प्रमाद वर्द्धक, [४] अनिष्ट-स्वास्थ्य विनाशक, [५] अनुपसेव्य।

१] त्रसहिंसा कारक—जिनके भक्षण से मांस वाले चलते फिरते जीवों का घात हो। जैसे - मांस भक्षणं, ऊमर, गूलर, कठूम्बर, वड़, पीपर आदि फलों का भक्षण करना। अनछना जल पीना रात्रि में भोजन करना।

[२] बहु स्थावर हिंसा कारक—जिन पदार्थों के खाने में अनन्त स्थावर प्राणियों का घात सम्भव हो-यथा-सब प्रकार के जमीकन्द जिनके पत्ते चटक कर टूट जायें-ऐसी वनस्पितियाँ अपरिपक्क फल, फूल आदि।

[३] प्रमाद वर्धक—जिनके सेवन से मानसिक चेतना का विनाश हो विचारशक्ति का ह्रास हो यथा-शराब, मांस, तम्बाखू अफीम आदि।

[४] स्वास्थ्य-विघातक—जो हमारे स्वास्थ्य के प्रतिकूल हों ऐसे पदार्थ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[५] अनुपसेव्य—जिनका सेवन सभ्य समाज के लिए अनुचित हो ऐसे लोकनिन्द्य अपवित्र पदार्थों का सेवन।

सावयधम्मदोहा कार ने अभक्ष्यों के विषय विस्तार से विचार किया है प्रथम तो उन्होंने बतलाया है कि व्यक्ति को अपना हृदय पवित्र रखना चाहिए। हृदय की पवित्रता से ही शरीर की पवित्रता मानी जाती है अन्यथा यह शरीर तो अपवित्र है ही।

अहचित्तें सुविसुद्धइण सुच्चइ सव्वु शरीरु।

चित्त के विशुद्ध होने से सब शरीर विशुद्ध हो जाता है।

अनछना जल पीना अभक्ष्य है—

जेणं अगालिउ जलु पियउ, जाणिज्जइ ण पवाणु।
जो णं पिइई अगालियउ, सो धीवरहं पहाणु॥

—जिसने बिना छाना पानी पिया उसने प्रमाण नहीं जाना जो बिना छना पानी पीता है वह धीवरों में प्रधान है।

जैन दृष्टि में मक्खन को भी यदि वह बहुत समय का रखा हुआ है, तो अभक्ष्य बतलाया है, कारण उसमें दो घड़ी ऊपर असंख्य जीव-राशि उत्पन्न हो जाती है। जिससे त्रस हिंसा होती है—

आमिस सरि सउ भासियउ सो अंधउ जो खाइ।
दो हि मुहुत्तहं उवरहिं लोणिउ सम्मुच्छाइ॥

मूली, मुरार, [मृणाल] लहसुन, तुंबा, कलिंग, सूरण व सब प्रकार के अज्ञात अथवा अपरिपक्व फलों का भक्षण करने से त्रस तथा स्थावर हिंसा होती है अतएव ये वस्तुएं त्याज्य ही हैं। श्री समन्त भद्र स्वामी कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अल्पफल-बहुविघाता-न्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि ।
नवनीत—निम्ब—कुसुमं, कैतकमित्येवमत्रहेयम ॥

अथवा

मूल-उणाली-मिस-ल्हसुण, तुंवड-करण-कलिंगु ।
सूरण फुल्ल त्थाणयहि, भक्खणि दंतण भंगु ॥

—सावय धम्म दोहा ।

दूध, दही में दो दल वाले अन्नों को—दालों को मिलाकर खाना भी अभक्ष्य है, इससे उदर विकार तो होता ही है। वासना-वृद्धि के साथ दालों में दही, मही आदि के मिश्रण से जीव राशि उत्पन्न हो जाती है, और सदाचारी दयालु गृहस्थ की भावना ऐसे पदार्थों के भक्षण की कैसे हो सकती है ?

वेदल मीसिउ दहिमहिउ. जुत्तु ण सावय होइ ।
खद्धइं दंशण भंग पर, सम्मत्तु वि मइलेइ ॥

जैन दृष्टि में मधु शहद को भी अभक्ष्य बताया गया है। कारण यह अनेक मक्षिकाओं के घात से उत्पन्न होता है, मधु रस में स्वयं अनन्त जीव स्वभावतः उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। पंडित प्रवर आशाधर जी कहते हैं—

मधुकृद् व्रात-घातोत्थं मध्वशुच्यपि बिन्दुशः ।
खादन् बध्नात्यघं सप्त-ग्राम-दाहांहसोऽधिकम् ॥

—'मधुमक्खियों के समूह के घात से उत्पन्नहोनेवाला और अपवित्र एक बिन्दु मात्र भी मधु को खाने वाला व्यक्ति सात गाँवों के जलाने के पाप से अधिक पाप को बांधता हैं।

यहाँ किसी को यह न समझना चाहिए कि यह कैसी अट-पटी बात कह दी। मधुभक्षण के पाप का गौरव बताना ही यहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्य है कारण बहुत से लोग मधु-भक्षण से क्या पाप है—इस बात को नहीं समझते, वस्तुतः अभक्ष्य भक्षण के निषेध में दया भावना की रक्षा ही प्रमुख है क्योंकि दया धर्म का मूल है अहिंसा की भावना जहां न हो वहां धर्म कैसा ?

दयजि मूलु धम्मंघिबहु, सो उप्पाडिउ जेण।
दल फल कुसुमह कवण कह, आमिषु भक्खिउ तेण॥

दया ही धर्म वृक्ष का मूल है। इसे जिसने उपार डाला उसने दल, फल कुसुम की कौन कथा, मांस भक्षण ही कर लिया।

यहां यह कहना केवल कुतर्क ही होगा कि ऐसी स्थिति में तो खाने लायक कोई भी पदार्थ न रह जायेगा। तब शरीर की स्थिति कैसे रहेगी और शरीर की स्थिति के अभाव में शांति पथ की साधना भी कैसे संभव हो सकेगी ? अतः वर्तमान की ही शक्ति वाली दशा में साधक को सर्व पदार्थों का त्याग करके अपने को मृत्यु के हवाले करने योग्य नहीं है। क्योंकि "जहाँ सारा जाता देख, आधा लीजे बाँट" इस लोकोक्ति के अनुसार अयोग्य व हिंसा युक्त होते हुए भी प्रयोजन वश अधिक हिंसा का त्याग करके अल्प हिंसा का ग्रहण कर लेना नीति है। परन्तु अभिप्राय में यह अल्प हिंसा भी त्याज्य ही रहती है।

असंख्य जीव राशि वाले पदार्थों का कुछ परिचय दे दिया गया है। आगे और भी नाम लिये जाते है—वे पदार्थ जो बासी हो जाने के कारण, अधिक पक जाने के कारण, गलसड़ जाने के कारण, अपने प्राकृत स्वाद से चलित हो जाते हैं, भले ही वे पहले भक्ष्य हों पर अब अभक्ष्य हैं। बासी भोजन, अचार, मुरब्बे, खमीरे, चटनी, कांजी वड़े, गली सड़ी वनस्पति, बहुत कच्ची

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब्जी। जैसे कोंपल या बहुत छोटे साईज की भिण्डी, तोरी, ककड़ी, काठ को फोड़कर निकलने वाली वनस्पति जैसे खुम्बी, सांप की छतरी इसी कोटि में सम्मिलित हैं। इसके विषय का परिज्ञान करके इनका त्याग कर देना चाहिए।

उन्नत लक्ष्य वाले सद्गृहस्थ को तो सादे जीवन में ही आनन्द आता है। विश्व और राष्ट्र की अनेक समस्याएँ भी सादे और पवित्र जीवन से ही सुलझती हैं। महान पथ के पथिक को इन्द्रियों के पोषण का समय कहां? वह इन्द्रियों का दास रह भी कैसे सकता है।

भोजन शुद्धि के लिये कुछ विचारणीय बातें—

दुग्धशुद्धि— आज की विकट परिस्थिति में सब बातें पूर्णतः निभाई जानी असंभव हैं। कम से कम बर्तन स्वच्छ मँजे हो। बर्तन मापने का और दुहने का अपना होना चाहिए। दुहने वाले का हाथ व पशु के थन अवश्य अपने छने हुए स्वच्छ पानी से धुलवा दिये जाने चाहिए। घर लाकर उसे दूसरे बर्तन में छान लेना चाहिए। दूध निकालते ही बर्तन को अच्छी प्रकार ढक देना चाहिए, ताकि वायु मण्डल से जीवाणुओं का प्रवेश न हो सके।

घर में लाकर दूध को जल्दी से जल्दी आग पर रखकर गरम कर लेना चाहिए, ताकि उनमें रहे थोड़े बहुत जीवाणु दूर हो जायें। और उनमें उनकी संतान वृद्धि न होने पावे। यदि शाम तक रखना अभीष्ट है तो तीन बार उबाल देकर दूध को अग्नि पर से उतार लेना चाहिए। और जल्दी से जल्दी अधिक से अधिक ठंडा करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि जल्दी ही प्रयोग में लाकर समाप्त कर देना हो तो ठण्डा करने की कोई आवश्यकता नहीं, आग पर रखा रहे, तब भी कोई हर्ज नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दही—दही जमाने के लिये जामन का व दूध केतापमान का बहुत अधिक विचार रखना चाहिए। आग के निकट रख कर दही जमाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से दही फट जाता है व खट्टा हो जाता है। गर्मी के दिनों में दही वाला बर्तन बराबर ठंडे पानी में रखना चाहिए और सर्दी के दिनों में उसे किसी स्वच्छ कपड़े में लपेट कर रखना चाहिए।

जामन—जामन के संबंध में बहुत विवेक की आवश्यकता है। जामन मीठे दही का होना चाहिए, खट्टे का नहीं। क्योंकि खट्टे जामन से दही भी खट्टा हो जायगा। जामन फटा हुआ नही होना चाहिए। जामन में से दही का पानी निचोड़ कर निकाल देना चाहिए क्योंकि वह खट्टा होता है। जामन को दो तीन बार स्वच्छ पानी में धो लेना और भी अच्छा है क्योंकि ऐसा करने से उसमें से रही सह सही खटास निकल जाती है।

जामन के प्रयोग का सरल उपाय यह है कि कच्चे नारियल के सूखे गोले के ऊपरी छिलके की कटोरी को दही में डाल कर जमा दे। अगले दिन उसे निकाल कर सुखा दे। अब जब भी जामन देना हो दूध में इस कटोरी को डुबा दें। दही प्रयोग करते समय इसे निकाल कर फिर सुखा दें। गर्मी में जामन थोड़ा दिया जाता है और सर्दी में अधिक। अधिक देर जमाना हो, तो थोड़ा जामन दिया जाता है, और थोड़ी देर जमाना अभी हो तो अधिक।

घृत शुद्धि— उपर्युक्त शुद्ध दही को बिलोरकर उसमें से निकला मक्खन तुरंत ही आग पर रख देना चाहिए। १० मिनट की प्रतीक्षा करनी भी योग्य नही, क्योंकि इसमें जीवाणु की उत्पत्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़े वेग से होती है। फिर भी अधिक से अधिक पौन घंटे की मर्यादा के अन्दर अवश्य गर्म कर लेना योग्य है इसके अधिक काल बीत जाने पर वह अभक्ष्य की कोटि में चला जाता है। इस इस प्रकार से बने घी को अठ पहरा घी कहते हैं। क्योंकि दूध से घी बनने तक केवल ८ पहर या २४ घण्टा ही लगे हैं। ऐसा अठ पहरा घी ही शुद्ध है। इस को भी बराबर प्रति मास उबालकर पुनः-पुनः निथारते रहना चाहिए। ताकि जीवाणुओं के बीज वहाँ पुनः उत्पन्न न होने पावें। आप देखेंगे कि प्रत्येक बार कुछ न कुछ छाछ अवश्य निकल आती है।

तैल शुद्धि— तेल शुद्धि के लिए सरसों या तिल आदि को अपने घर पर स्वच्छ जल से धोकर सुखा लें। फिर कोल्हू को अपने स्वच्छ जल से अच्छी प्रकार धुलवाकर उसमें पीड दें। इस प्रकार प्राप्त किया गया तेल ही शुद्ध है।

वनस्पति शुद्धि—वनस्पति शुद्धि में यह विवेक अवश्य रखना चाहिए कि कोई भी वनस्पति काटने छाँटने से पहले या चौके में प्रवेश करने से पहले आपने स्वच्छ जल से एक बार अच्छी तरह रगड़ कर धो लें। ताकि उनके बाहर अशुद्ध जल व अन्य छुआछूत व जीवाणु संबंधी सर्व दोष दूर हो जायं।

खाण्ड शुद्धि— आज की परिस्थिति में बाजार की खाण्ड (हाईड्रो वाली न हो) को घर पर पुनः स्वच्छ पानी में पका कर उसका बूरा कर लेना चाहिए। ऐसा करने से उसकी पहली सब अशुद्धियां दूर हो जाती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैयक्तिक आर्थिक समस्या के समाधान, इन्द्रिय विजय और राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में महान योग देता है। क्रियात्मक रूप से उसे पालना हम गृहस्थों का कर्तव्य है।

सत श्रद्धान—

सन १९३४ की बात है, जबकि पूर्वी भारत के बिहार, बंगाल, एवं आसाम प्रदेशों पर भूकम्प का भयंकर प्रकोप हुआ था। समस्त समाचार पत्र भूकम्प के प्रलयंकर समाचारों से भरे रहते थे। उन्हीं दिनों काशी में अध्ययन करने वाले कुछ विद्यार्थियों ने भी भूकम्प के समाचार पढ़े और पीड़ितों के सहायतार्थ वे आसाम जा पहुंचे।

विनाश के इस भयानक वातावरण में काशी के विद्यार्थियों ने एक ऐसे व्यक्ति को भी देखा जो अव्यवस्थित-सा दिखाई दे रहा था विद्यार्थियों ने कहा—सेठ जी, ऐसा मालूम होता है कि आपके घर में सभी प्रसन्न हैं, किसी का कुछ नहीं हुआ।

सेठ जी बोले—आप जिज्ञासु हैं तो सुनिए आज से तीस वर्ष पूर्व मैं राज पूताना से यहाँ आया था खाली हाथ। प्रारंभ में कुछ वर्ष मैंने यहाँ नौकरी की, फिर साँझे में काम किया, बाद में अपना स्वतंत्र व्यवसाय चालू किया, चार पांच लाख रुपया कमाया और मुझे लोग 'सेठ जी' कहने लगे।

इसी बीच मेरी शादी हुई, बाल बच्चे हुए और ईश्वर की कृपा से मुझे किसी भी वस्तु का अभाव नहीं रहा। परन्तु लाखों रुपये कमाकर भी मेरे मन में उनके प्रति कभी मोह उत्पन्न नहीं हुआ। स्त्री पुत्र पाकर भी मैंने उनमें कभी ममता नहीं रखी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खजाञ्ची की तरह रुपयों को पराया समझा और स्वतंत्र प्राणी समझ कर स्त्री बच्चों का पालन किया।

जब यह भूकम्प आया, उससे चार दिन पहले मैं दूसरे गाँव गया हुआ था। वापिस आया तो देखा कि अपना मकान पहिचानना भी कठिन हो रहा है। मकान तो है ही कहाँ, धूल का ढेर मात्र है। और अनुमान यह है कि स्त्री बच्चे मलबे के नीचे दबकर मर गये। पर यह अनुमान कोरा अनुमान मात्र नहीं, अक्षरशः सत्य है। स्त्री बच्चे जीवित होते तो वे आज हमारे बीच होते और इतने मलबे को हटाकर उनकी लाशें प्राप्त करना भी असंभव सा ही प्रतीत होता है।

यह सुनकर विद्यार्थियों की आंखें गीली हो गईं। रोने की क्या बात है' - सेठ जी ने कहा। एक धोती और एक लोटा आज भी मेरे पास है इन्हें लेकर मैं गाँव लौट रहा हूँ। जब सारा संसार ही स्वप्नवत् है तो इसमें चिन्ता की क्या बात है?

यह सुनकर छात्रों ने मन-ही मन सेठ जी को धन्यवाद दिया और जाना कि वास्तव में वे 'सत्श्रद्धानी' थे।

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
सं०........
दिनांक........
नरिया (का.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाप्य-मंत्र—

आत्मिक पवित्रता की प्राप्ति हेतु हमें परमात्म-चिन्तन करते रहना चाहिए परमात्माओं के पवित्र गुणों का स्मरण करने से आत्म गुणों का उद्बोध तो होता ही है हमें लौकिक सुखों की प्राप्ति भी होती है। आत्म श्रद्धा की जागृति से सातों प्रकार के भय दूर हो जाते हैं; आत्मबल में वृद्धि होती है और पापों की कालिमा दूर भाग जाती है। इसलिए प्रत्येक कल्याणेच्छु प्राणी को जिसे शुभोदय से मन और वाणी प्राप्त है, इन मंगल मंत्रों का जाप करना चाहिए। पवित्र अर्थ से अनुस्यूत शब्द भी पवित्र होता है और उसमें अचिन्त्य शक्ति समाहित हो जाती है यही कारण है कि मंत्रों के द्वारा अनेक लौकिक बाधाओं का निवारण होता है—

त्वन्नाम मंत्रमनिशं मनुजा स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्धभयाः भवन्ति।

ये मंगल मंत्र एकाक्षर से लेकर अनेकाक्षरों तक होते हैं। मंगलकामी पुरुष उनका सदा स्मरण करें इसलिए कुछ मंत्र यहाँ दिये जाते हैं—

एकाक्षरी मंत्र यथा— [१] ॐ, [२] [ह्रीं]

ये दोनों मंत्र क्रमशः पञ्चपरमेष्ठी और चौबीस तीर्थंकरों के पुण्य नामों से सार्थक हैं—

'ॐ' में अरिहन्तों का 'अ' अशरीरी सिद्धों का 'अ' आचार्यों का 'आ' उपाध्यायों का सूचक 'उ' और मुनियों का सूचक 'म' इन अक्षरों से अ + अ + आ + उ + म् - 'ॐ' बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह बीजाक्षर मंत्र है। इसके उच्चारण से आत्मानन्द की प्राप्ति होती है।

अरहन्ता असरीरा, आइरिया तह उवज्झाया मुणिणो।
पण अक्खर णिपण्णो ॐकारो पञ्च परमेट्ठी॥

द्व्यक्षरी मंत्र-- ऊँ ह्रीं
त्र्यक्षरी यथा-- ऊँ ह्रीं क्लीं

इसी प्रकार--

४-अर्हंत सिद्ध, ५-ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ६-ॐ नमोऽर्हत्सिद्धेभ्यः, ७-ॐ असिआउसा, ८-ॐ ह्रीं वृषभादि वीरान्तेभ्यश्चतुर्विंशति तीर्थकृद्भ्यो नमः, ९-ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा सर्व शान्तिं कुरु कुरु आदि अनेक मंत्र हैं जिनके स्मरण से इह लौकिक पारलौकिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

जैन धर्म में अनादि निधन णमोकार मंत्र की बड़ी प्रसिद्धि है जिसके विषय में बतलाया है--

एसो पंच णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं॥

यह पञ्च नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला समस्त मंगलों में पहला मंगल है। इसमें पाँचों परमेष्ठियों-परम गुरुओं को नमस्कार किया गया है--

णमो अर्हंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोक के सब अरहन्तों को नमस्कार, सब सिद्धों को नमस्कार, सब आचार्यों को नमस्कार, सब उपाध्यायों को नमस्कार एवं सब साधुओं को नमस्कार ।

णमोकार मंत्र की प्राभाविकता की अनेक कथाएँ जैन साहित्य में भरी पड़ी हैं ।

भावना पूर्वक इन मंत्रों का मंगल स्मरण करने से हमें आत्म प्रकाश मिलता है ।

तात्विक-चिंतन प्रवचन—

पाप-पुण्य—

पुण्य पाप दोनो समान है, पुण्य के उदय में गौरव और पापके उदय में दीनता होती है । दोनों ही आत्म-कल्याण के उदय में वाधक हैं अतः जिन्हें आत्म-कल्याण करना हो दोनों से ममता भाव छोड़ना चाहिए । क्योंकि दोनों ही सोने और लोहे की वेड़ीवत् बन्धन के कारण हैं, अतः मुमुक्षु जनों को दोनों ही उपेक्षणीय हैं, मनुष्य पर्याय पाने की सार्थकता इसीमें है कि दोनों ही बन्धन तोड़े जायें ।

धर्म और धन

दुनियां (संसार) में गरीब होना कोई पाप नहीं है, कोई शर्म की बात नहीं है, और न कोई अभिशाप ही किन्तु अन्यायी एवं दुराचारी तथा अधार्मिक होना पाप एवं लज्जास्पद है, किसी भी योग्य और विख्यात लेखक ने यह नहीं लिखा है, और न कहा है कि तुम अपने कर्त्तव्य को भूलकर धर्म मार्ग छोड़कर धन का संग्रह करो । पैसे का धनी-धनी नहीं धर्म रूपी धन का धनी ही धनी है । धर्मरूपी धन सदैव साथ रहता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौन किससे प्रेम करता है ।

गंगा जी में बड़े जोर से बाढ़ आई थी पानी बराबर ऊपर चढ़ता जाता था एक पेड़ की शाखा पर एक बँदरी अपने बच्चों के साथ बैठी थीं पानी ऊपर को आता देखकर बँदरी बच्चों को लेकर और ऊपर की डाली पर चढ़ गई किन्तु पानी भी उतने ऊपर चढ़ता गया उसके बच्चे भी बँदरी से चिपट गये पानी भी बँदरी के पैरों के ऊपर आने लगा आ गया तब उसने बच्चों को पकड़कर पैरों के नीचे दबा लिया पानी और ऊपर चढ़ने पर दूसरे तीसरे बच्चों को भी पैरों के नीचे दबा लिया जिससे वह स्वयं बच सके - सबको अपने प्राण प्यारे हैं ।

संसार का प्रेम मोह मिश्रित है यह आँखे देखी सत्य घटना है । दुनिया के स्वार्थी प्राणियों का चित्र जन जन के समक्ष प्रस्तुत है ।

कौन यहाँ पर तेरा है ?

तू न किसी का, कोई न तेरा, क्यों कहता है मेरा मेरा,
कौन यहाँ पर है रे तेरा ?
मात पिता परिवार का घेरा, धन दौलत माया बहुतेरा ।
चार दिनों का है यह डेरा, साथी न इनमें कोई तेरा ॥
क्यों कहता है मेरा मेरा, कौन यहां पर है रे तेरा ॥ १ ॥
यह सब स्वारथ के हैं साथी, निज मतलब को भरते बाथी ।
पाप कमाता तू ही अकेला, संग चलेगी नहीं अधेली ॥
क्यों कहता है मेरा मेरा, कौन यहां पर है रे तेरा ॥ २ ॥
अपना अपना सब कहते हैं, पर अपना पन नहीं देते हैं ।
दुःख में कोई न आता नेरा, सहना पड़ता तुझको तेरा ॥
क्यों कहता है मेरा मेरा, कौन यहाँ पर है रे तेरा ॥ ३ ॥
दर्शन ज्ञान चरित को जान, सम्यक् सहित रहेगा मान ।
धर्म ही साथ निभायेगा तेरा, भंवर मिटेगा जग का फेरा ॥
क्यों कहता है मेरा मेरा, कौन यहां पर है रे तेरा ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ सुन्दर जीवन के सूत्र ॥

खाओ पिओ, छको मत, बोलो चालो, बको मत ।
देखो भालो, तको मत, चलो फिरो, थको मत ॥

विवाद क्यों ?

मैं जो और जिस प्रकार जानता हूं वही सत्य है, किन्तु दूसरा सहधर्मी भाई जो जैसा जानता हैं वह झूठ है, ऐसा समझ कर जो दूसरे सहधर्मी से विवाद करता है उसमें न तो जिज्ञासा है और न ज्ञान प्रसार की भावना है। दूसरे सहधर्मी को हम प्रेम से समझा सकते है, उस पर बलात् अपनी मान्यता लाद नहीं सकते विवाद तो झगड़े का दूसरा नाम है।

झगड़े से झगड़ा शान्त कभी नहीहो सकता अतः सहधर्मी से से तर्क करना, उसे बदनाम करना, उस पर कीचड़ उछालना ये सब कार्य कषायावेश में होते हैं, इस भावना में धर्म, प्रेम या धर्म प्रसार की भावना का लवलेश भी कैसे माना जा सकता है ?

फिर जिन से हमारे विचार बिलकुल विपरीत हैं उनसे विवाद करने से कोई लाभ नही। हां हम अपना दृष्टिकोण रख सकते हैं। विवाद से कोई लाभ नहीं

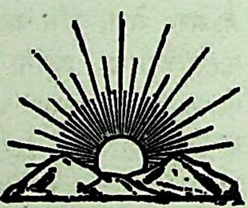

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्याणकारी पद

प्रार्थना

[रच—विजयकुमार चौधरी]

तेरी प्रतिमा मन-मन्दिर में तेरा ही गीत अधर में हो।
तेरी छवि का संकेत प्रभो उर की हर एक लहर हो॥

(१)

तू ज्योतिर्मय अन्तर्यामी, तूं वीतराग चिन्मय ज्ञानी।
तू शुद्ध निरञ्जन निर्विकार, तू निज स्वरूप का है ध्यानी॥
तेरी आभा से आलोकित, तन-मन यह जीवन पावन हो।
सन्ताप मिटे भव-भव का प्रभो, सन्तोष सुधा का सावन हो॥

(२)

हों सत्यनिष्ठ समभावचित्त, हों राष्ट्रभक्त कर्त्तव्य व्रती।
साहस संयम के पुतले बन-बन वीर साधन तत्व यती॥
अभिमान रहे निज संस्कृति का, पर सेवा का प्रभु ज्ञान रहे।
मर जायें न पर प्रण त्याग करें मर्यादा का प्रभु ज्ञान रहे॥

(३)

जीवन में ज्योति सदा सरसे, संकट में मृदु मुस्कान रहे।
प्रति पल विकसित आशाओं का, प्रभु निर्मल सुखद विहान रहे॥
हृत्-तंत्री के तारों में प्रभु, मधुराग भरे पावनता का।
सात्विकता से परिपूर्ण सदा, हम पाठ पढें मानवता का॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४)

पा जायें असत् से सत् को हम, अमृतमय मृत्यु बन पायें।
आत्मिक विकास से जग मग, हो तेरे स्वरूप मय बन जायें॥
यह साध हमारी दयानिधे, मन मग्न भक्ति निर्भर में हो।
तेरे स्वरूप का सौरभ प्रभु, मेरे मानस सर वर में हो॥
तेरी प्रतिमा मन मन्दिर में, तेरा ही गीत अधर में हो।
तेरी छवि का संकेत प्रभो, उर कीं हर एक नज़र में हो॥

❀❀❀❀

अध्यात्म कीर्तन

जय ज्ञान घनं चैतन्य स्वयं, अरहंत सदा जय वंत रहो।
जयवत रहो जयवंत रहो, अरिहंत सदा जयवंत रहो।
जय ज्ञान घनं चैतन्य स्वयं, श्री सिद्ध सदा जयवंत रहो।
जयवंत रहो जयवंत रहो, श्री सिद्ध सदा जयवंत रहो।
जय ज्ञान घनं चैतन्य स्वयं, श्री साधु सदा जयवंत रहो।
जयवत रहो जयवंत रहो, श्री साधु सदा जयवंत रहो।
जय ज्ञान घन चैतन्य स्वयं, गुरुदेव सदा जयवत रहो।
जयवंत रहो जयवंत रहो, गुरुदेव सदा जयवंत रहो।
जय ज्ञान घनं चैतन्य स्वयं, सम्यक्त्व सदा जयवत रहो।
जयवंत रहो जयवत रहो, सम्यक्त्व सदा जयवत रहो।
जय ज्ञान घनं चैतन्य स्वयं, उपयोग सदा जयवंत रहो।
जयवंत रहो जयवंत रहो, उपयोग सदा जयवंत रहो।
जय ज्ञान घनं चैतन्य स्वयं, चारित्र सदा जयवत रहो।
जयवत रहो जयवंत रहो, चारित्र सदा जयवत रहो।
जय ज्ञान घनं चैतन्य स्वयं, चैतन्य सदा जयवंत रहो।
जयवंत रहो जयवंत रहो चैतन्य स्वयं जयवंत रहो।

❀❀❀❀

Gaṇesh Varnį Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नरदेही का महत्व

[लेखक—श्री प्रसन्नकुमार सेठी एम. काम.]

जिस देही के लिए देवता तरसें भी अकुलाते हैं।
मूर्ख और अज्ञानी ही उसको बेकार बताते हैं।
है अमूल्य मानव का चोला मोक्ष इसी से पाते हैं।
छोटा सा दृष्टान्त इसी पर आओ सखे! सुनाते हैं।

(२)

एक दरिद्र अशिक्षित बूढ़ा, सभी तरह से जीता था।
बन्धुहीन, बेकार, बिचारा किसी तरह से जीता था।
निराहार रहकर कितनी ही वार सिर्फ जल पीता था।
आधि व्याधि विपदाओं में ही उसका जीवन बीता था।

(३)

साधु एक भिक्षा लेने को उस गरीब के घर आया।
बोला वह दरिद्र, "बाबाजी ! धन्य भाग दर्शन पाया।
किन्तु दान क्या दूँ, कुछ भी तो नहीं, घोर संकट छाया।
दो दिन बीत चुके, मैंने भी नहीं अन्न दाना खाया।

(४)

साधु घुसे कुटिया में, देखा, सचमुच ही नादारी है।
दृष्टि पड़ी सिल-लोढ़े पर, पूछा, "यह क्या बीमारी है।
बोला बूढ़ा "पत्थर की यह वटिया मुझको प्यारी है।
चटनी पीस लिया करने को यही सम्पदा सारी है।

(५)

बोले बाबा, "किसको पत्थर कहता मूरख मतवाले।
यह तो पारस है, ला लोहा, सोना अभी बना डाले।
संड़सी करछी चिमटा चाकू ढूंढ़ सभी जाले आले।
लाकर ज्योंहीं जरा छुआया सबको सोने में ढाले।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६)

ठीक हमारी यही दशा है, हीरा जनम गमावें रे।
पारस से हम चटनी पीसें, फिर पीछे पछतावें रे।
काग उड़ावन हेतु रतन को यों ही व्यर्थ गमावें रे।
नर तनपाय करो आतम हित, समझदार समझावे रे।

[रचयिता-श्री पं. गोरेलाल जी शास्त्री द्रोणगिरि]

[१]

रे जीव क्यों आसक्त हो संसार में पगा।
इससे अभी तक नहिं मिला है मोक्ष का मगा।
तन पुत्र धाम बाम हैं साथी न जीव के।
है सब कुटुम्ब देखलो निज स्वार्थ का सगा॥ रे जीव॥१॥

जब अभिन्न देह भी साथी न जीव का।
तब भिन्न और क्या पदार्थ साथ जायगा।
जिस द्रव्य की प्राप्ती में तूने पाप नित किये
वह एक पैर भी न तेरे साथ जायगा॥ रे जीव॥२॥

नारक पशू व स्वर्ग या मानुष की योनि में।
रे जीव बस अकेला ही सुख दुःख सहेगा।
विषयों में मुग्ध होय कर निज को भुला रहा।
इनके विपाक से तुझे संताप मिलेगा॥ रे जीव॥३॥

है अंजुली के नीर सम यह आयु की दशा।
काल के वश में हैं सभी सुर-असुर खगा।
संसार की सब ही दशा नश्वर समझ के 'लाल'।
कर त्याग इसे शीघ्र निजानन्द पायगा॥ रे जीव॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२]

कुछ करो स्वपर कल्याण मनुज की गति पाई।
नर भव का पाना जग में अति कठिनाई॥
जब पूर्व जन्म का सुकृत उदय आता है।
तब मानुष गति में जीव जनम पाता है।
निज हित करने की मिली जो कुछ साता है।
यदि करे कर्म का नाश मोक्ष जाता है।
इसको पाकर मत व्यर्थ गमाओ भाई॥ कुछ करो. ॥१॥

यह श्रावक कुल और जैन धर्म का मिलना।
अन्तर का दीपक आत्म-बोध का लखना।
पाकर के सब विधि योग आत्म हित-करना।
आखिर को होगा मृत्यु शीर्ष पर चढ़ना।
ये फिर नाहिं मिलि है मणि जो उदधि समाई। कुछ करो. ॥२॥

हितकारी गुरुओं की संगति का पाना।
सुखकारी शांतिमयी मुद्रा का ध्याना।
पाकर के यदि नहिं किया स्वपर कल्याणा।
तो फिर यह अवसर नहीं लौटकर आना।
उपकारी गुरुओं ने यह सीख सुनाई॥ कुछ करो. ॥३॥

संसार जलधि से पार उतरना होवे।
तो मोह नींद में व्यर्थ पड़ा क्यों सोवे।
तज नींद शीघ्र ही जो आतम हित जोवे।
तो उभय लोक की बाधायें सब खोवे।
नर गति की समझो 'लाल' यही प्रभुताई॥ कुछ करो. ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[३]

है णमोकार की महिमा अपरम्पारी ।
नहिं हो यकीन तो देखो शास्त्र मझारी ।
रस कूप मध्य में पड़ा हुआ इक नर था ।
णमोकार मंत्र से पूत हुआ अन्तर था ।
वह गत-प्राण हो मरकर हुआ अमर था ।
अज-पुत्र इसी को सुमर गया सुरपुर था ।
नित जाप जपे ते हरे आपदा सारी । है णमो. ॥१॥

अविवेकी ग्वाला सुभग चराता पशु था ।
पा मंत्र मुनी से हुआ सेठ का शिशु था ।
इक श्वान द्विजों से हुआ कंठ-गत-असु था ।
पा मंत्र हुआ यक्षेन्द्र सहित वसु-गुण था,
हो गये मंत्र से अंजन भव दधि पारी ॥ है णमो. ॥२॥

हथिनी कीचड़ में फँसी सहे दुखभारी,
यह मंत्र सुमर शुभ गति में शीघ्र सिधारी
युग नाग-नागिनी मूर्ख साधु ने जारी,
उपदेशे प्रभु पारस ने करुणा धारी ।
भये पद्मावती-धरणेन्द्र अमर पदधारी । है णमो. ॥३॥

उपदेश मुनी का मरकट ने पाया था ।
ज मान्तर में हो गया सुनिष्काया था ।
यह वृत्त सभी आगम में बतलाया था ।
सत् श्रद्धानी भव्यों के मन भाया था ।
अब करो अटल विश्वास समझ हितकारी । है णमो. ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो णमोकार मंत्र को धरे भाव से उर में।
वह पाप-कालिमा करे दूर क्षण भर में।
हो लौकिक सुख से पूर्ण स्वकीय उमर में।
भोगेगा आनन्द महा शिवपुर में।
नित जपो 'लाल' यह णमोकार सुखकारी। है णमो. ॥५॥

[४]

तज विषय भोग नित भजन करो नित प्यारे
यह क्षण भंगुर संसार भ्रात हिय लारे ॥
इस जग के सकल पदार्थ अथिर हैं भाई
सुरधनु अथवा जैसे चपला चपलाई।
यह दशा आयु की अञ्जुलि जल की नाई,
यौवन की शोभा विनश जाय क्षण भाई।
ये विषय भोग दुख रूप नाग ज्यों कारे॥ तज विषय. ॥१॥

तन तात मात धन धाम बाम सुत प्यारा,
है नहीं समय पर कोई किसी का प्यारा।
है अमित दुखों की खानि सकल संसारा,
तज मोह करो नित आतम काज सुधारा।
इस मोह कर्म वश भुगते दुःख अपारे ॥ तज विषय. ॥२॥

इस लाख चौरासी योनि मांहि तूं भटका,
नाना गतियां में धरे भेष ज्यों नट का।
तूं गया जहाँ पर रहा वहाँ ही खटका,
नहिं मिला कभी हित मार्ग जगत में अटका।
अति हुए क्लेश धर जन्म मरण बहु बारे॥ तज विषय. ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निज विषयों को तूंने हितकर माना है,
फस रात दिवस नहिं सन्मुख पहिचाना है।
इस निंद्य कार्य का जब विपाक आता है,
तब भोगों से संताप अनित भाता है।
सुख पावेगा वह जो सत्संयम धारे ॥ तज विषय. ॥४॥

शुभ कर्म योग से मनुज जन्म पाया है,
तप करने लायक मिली सुदृढ़ काया है।
करलो कुछ आत्म भलाई–समय आया है,
गुरुओं ने हमको सब विध समझाया है।
नहिं करो देर अब 'लाल' चेत झट जा रे ॥ तज विषय. ॥५॥

[श्री पं० मक्खनलाल जी देहली]

दुनियाँ में सबसे न्यारा, यह आत्मा हमारा।
सब देखन जानन हारा, यह आत्मा हमारा ॥टेक॥
यह गले नहीं अग्नि में, भीगे न कभी पानी में,
सूखे न पावन के द्वारा यह आत्मा हमारा ॥ १ ॥
शस्त्रों से कटे न कटा, नहीं तोड़ सके कोई भाटा।
मरता न मरी का मारा, यह आत्मा हमारा ॥ २ ॥
मां बाप सुता सुत नारी, झूठे झगड़े संसारी।
नहीं कोई देत सहारा, यह आत्मा हमारा ॥ ३ ॥
मत फंसे मोह ममता में, 'मक्खन' आजा आपा में।
तन धन कुछ नहीं तुम्हारा, यह आत्मा हमारा ॥ ४ ॥

ओ ! मुरझाने वाले फूल

जड़ चेतन दोनों हैं लेकिन ! दुनियां में है अमरत्व नहीं
धन संम्पत्ति निर्मूल निराश्रय, इनमें है कोई तत्व नहीं ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश दिन आगे देखा करते, जीवन मरण समस्यायें।
मुदित चित्त रोमांच बदलते, कैसे मिलन गीत गायें॥

स्थिर में अस्थिरता निश्चय, अविनश्वर में नश्वरता।
दुनियाँ का सच रूप यही है, मानव मन में व्याकुलता॥

सुख से दुःख जन्म से मृत्यु, अरु प्रभात से संध्याकाल।
हँसने वाले रो उठते हैं, आ जाता जब काल कराल॥

सतत फूलने फलने वालों, के मिट जाते सारे खेल।
दीप शिखा तब तक जलती है, तब तक बाकी रहता तेल॥

परिवर्तनमय बना हुआ जग, बनती प्रकृति सदा प्रतिकूल।
फिर क्यों इतराता तू इतना, ओ! मुरझाने वाले फूल!!

सम्बोधन—

जोलों देह तेरी काहू रोग सों न घेरी जोलों—
जरा नाहि नेरो जासों पराधीन परिहै॥
जोलों जम नामा वैरी देह न दमामा जोलों—
माने कान रामा बुद्धि जाय न बिगरिहै॥
तोलों मित्र मेरे निज कारण सम्हारिले रे,
पौरुष थकेंगे फेर पाछे कहा करिहै॥
अहो आग लागै जरसों झोंपरी जरन लागी।
कुआ के खुदाये कहो कहा काज सरिहैं॥

× × × ×

जैसी संगत कीजिए, तैसो ही परिणाम।
तीर गहे ताकै तुरत, माला ले प्रभु नाम॥

× × × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो मुख सुई न सीवे कंथा दो मुख पंथी चले न पंथा।
ये दो काज न होय सयाने विषय-भोग अरु मोख पयाने॥

× × × ×

धरम न जानत बखानत भरम रूप,
ठौर ठौर ठानत लराई पक्षपात की।
भूल्यो अभिमान में न पांव धरै धरनी में,
हिरदे में करनी विचारे उत पात की।
फिरे डावाँ डोल सो करम के कलोलनि में,
है रही अवस्था बबरूला जैसे पातकी।
जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुपाती भारी,
ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महा पातकी॥

× × × ×

काम पाय कर तप नहिं कीन्हा, आगम पढ़ नहिं मिटी कषाय।
धन को जोड़ धरम नहिं कीना कौन काम कीना तैं आय?

× × × ×

निरखत जिन चन्द्र वदन स्वपर सुरुचि आई
प्रगटी निज आन की पिछान ज्ञान भान की,
कला उदोत होत काम यामिनी पलाई।
सास्वत आनन्द-स्वाद पायो विनस्यो विषाद,
आन में अनिष्ट-इष्ट कल्पना नसाई॥
साधी निज साध की समाधि मोह व्याधि की,
उपाधि की विराधि के आराधना सुहाई।
धन दिन छिन आज सुगुन चिन्ते जिन राज अबै
सुधरे सब काज दौल अचल सिद्धि पाई।

× × × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोई दिन कटे सोई, आव में अवस घटै।
बूंद बूंद रीतै, जैसे अंजुरी को जल है॥
देह नित छीन होत, नैन तेज हीन होत।
जोवन मलीन होत, छीन होत बल है॥
आवे जरा नेरी, अस अंतक अहेरी तकै।
परभौ नजीक जात नर भौ विफल है॥
मिलकै मिलापी जन पूछत कुशल मेरी।
ऐसी दशा मित्र काहो कहे की कुशल है?

× × × ×

ज्यों समुद्र में पवन तें चहु दिशि उठत तरंग।
त्यों आकुलता सें दुखित लहै न सम-रस-रंग॥

× × × ×

चाहत हैं धन होय होय किसी विधि, तौ सब काज सरें जियराजी।
गेह चिनाय करूं गहना कछु, व्याहि सुता सुत बाँटिय भांजी॥
चिन्तत यों दिन जाहि चले, जम आनि अचानक देत दगाजी।
खेलत खेलि खिलारि गये रहि जाय रुपी शतरंज की बाजी॥

× × × ×

काहे को देह सों नेह करै तू, अन्त न राखी रहेगी यें तेरी।
मेरी ये मेरी कहा करै लच्छि सों, काहू की ह्वै के कहूँ रहि तेरी॥
मान कहा रहो मोह कुटुम्ब सों, स्वारथ के रस लागे सबेरी।
तातें तू चेत विचच्छन चेतन, झूठी ये रीति सबै जग केरी॥

× × × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालक है तब बालक सी बुधि जोबन काम हुताशन जारे ।
वृद्ध भयो तन अंग रहे थकि आये हैं श्वेत गये सब कारे ॥
पांव पसारि पर्यो धरनी महिं रोवै रटै दुख होत महा रे ।
बीती यौं बात गयो सब भूलि तू चेतत क्यों नहिं चेतनहारे ॥

× × × ×

राग उदै भोग भाव लागत सुहावने से,
विना राग ऐसे लागें जैसे नाग कारे हैं ।
राग ही सौं पाग रहे तन में सदीव जीव,
राग गये आवत गिलानि होत न्यारे हैं ।
रागसौं जगत रीति झूठी सब सांची जानें,
राग मिटे सूझत असार खेल सारे हैं ।
रागी विन रागी के विचार में बडोई भेद,
जैसे भटा पच काहू काहू कों बयारे हैं ॥

× × × ×

को काको दुख देत है, देत करम झकझोर ।
उरझे सुरझे आप ही, ध्वजा पवन के जोर ॥

× × × ×

जगत जन जूआ हार चले ।
काम कुटिल संग बाज़ी माड़ी, उन करि कपट छले ॥
चार कषाय मयी जहं चौपरि, पासे जोग रले ।
इत सरवस उत कामिनि–कौंड़ी, इह विधि झटक चले ॥
कूर खिलारि विचारि न कीन्हों, ह्वै है ख्वार भले ।
बिना विवेक मनोरथ काके, भूधर सफल फले ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

× × × ×

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुझ में मुझ में भेद यों और भेद कछु नांहि।
तुम तन तज पर ब्रह्म भए हम दुखिया तन मांहि॥

× × × ×

तेरा घट सर तामें तू ही है कमल वाकौ,
तू ही मधुकर है सुवासु पहिचानु रे।
प्रापति न ह्वै है कछु ऐसें तू विचारतु है।
सही ह्वै है प्रापति सरूप दो ही जानु रे॥

× × × ×

राम रसिक अरु राम रस, कहन सुनन के दोय।
जय समाधि पर गटभई तब दुविधा नहिं कोय॥

× × × ×

विराजै रामायण घट माहिं,
मरमी होय मरम सो जाने, मूरख जाने नाहिं।

× × × ×

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
यह परमामृत जन्म-जरा-मृतु-रोग निवारन॥

× × × ×

रे जिया जग धोखे की टाटी।
झूठा उद्यम लोक करत हैं, जिसमें निश-दिन घाटी।
जान बूझ कर अन्ध बने हो, आंखिन बाँधी पाटी॥
निकल जायेंगे प्रान छिनक में, पड़ी रहेगी माटी।
दौलतराम समझ मन अपने, दिल की खोल कपाटी॥

× × × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहे समझो पलक में, चाहे जन्म अनन्त ।
जब समझो तब समझ हो, घट में निज भगवन्त ॥

× × × ×

धरा के नीचे है पाताल, गगन पर बसा हुआ है स्वर्ग,
बीच में अधर मनुज का अहम्,
न जिसका आदि न जिसका अंत, चिरन्तन गमन आगमन क्रम ।
इसी को कहते जीवन हम !!

× × × ×

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिमि चंदन ।
केलि करें शिव मारग में जगमांहि, जिनेश्वर के लघु नन्दन ॥
सत्य स्वरूप सदा जिनके प्रगट्यो अवदात मिथ्यात-निकन्दन ।
शान्त दशा तिनकी पहिचानि करै करजोरि बनारसि वन्दनि ॥

× × × ×

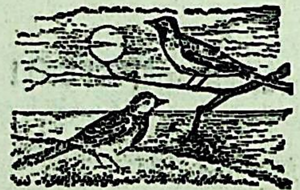

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगम-नवनीत

जो णवि जादि वियारं तरुणि यण कडक्खवाण विद्धोवि।
सो चेव सूरसूरो रणसूरो णो हवे सूरो।

—कार्तिकेयानुप्रेक्षा।

—जो पुरुष स्त्रियों के कटाक्ष रूपी वाणों से आहत होकर भी विकार को प्राप्त नहीं होता वह शूर वीरों में प्रधान है रण में जो शूर वीर हैं वे वास्तविक शूर वीर नहीं।

× × × ×

अनपेक्षितार्थवृत्ति कः पुरुषः सेवते नृपतीन्

—रत्नकरण्डक।

—जिसे किसी बात की अपेक्षा नहीं वह राजाओं के द्वार क्यों खट खटायेगा।

× × × ×

नरस्य सुलभं लोके निधि-स्त्री-वाहनादिकम्।
सम्यग्दर्शन-रत्नंतु साम्राज्यादपि दुर्लभम्॥

—मनुष्य को निधि, स्त्री, वाहनादिक की प्राप्ति लोक में सुलभ है। सम्यग्दर्शन रूपी रत्न तो साम्राज्य की अपेक्षा भी दुर्लभ हैं।

× × × ×

साधवो यदि विद्यन्ते किं तपस्तीर्थसंग्रहैः।

—यदि सच्चे साधु विद्यमान हैं तो तप और तीर्थों के संग्रह से क्या?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयैरेव यत्सौख्यं तेषां पर्यन्तगोऽस्म्यहम्।
ततः कुतो न मे तृप्तिः मिथ्या वैषयिकं सुखम्॥

--यदि विषयों में ही सुख है तो मैं तो पूरे विषयों को प्राप्त कर चुका हूँ, मुझे तृप्ति नहीं हुई-अरे विषम-सुख झूठा है।

× × × ×

अइ दुलहं मणुयत्तं लहिऊणं जे रमन्ति विषएसु।
ते लहिय दिव्य रयणं भूइणिमित्तं पजालंति॥

--अपूर्व सामर्थ्य सम्पन्न दुर्लभ मनुष्य पर्याय को पाकर जो जीव विषयों में रमण करते हैं वे दिव्य रत्न को पाकर भस्म के लिए उसे दग्ध करते हैं।

× × × ×

अस्ति चैकादशाङ्गानां ज्ञानं, मिथ्यादृशोऽपि यत्।
नात्मोपलब्धिरस्यास्ति मिथ्याकर्मोदयात् परम्॥

मिथ्या दृष्टि जीव के द्वादशांग श्रुतज्ञान के एकादश अंगों का ज्ञान होते हुए भी आत्मा का अनुभव नहीं होता। मोह कर्म जो उसके उदय में आ रहा है।

× × × ×

चदुगति भव्वो सण्णी पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो।
जागारो सल्लेखो सलद्धिगो सम्ममुव गमई॥

: चारों नरक-पशु-मनुष्य-देव-गतिवाला भव्य जीव, पर्याप्तक, विशुद्ध भावों वाला, साकारोपयोगी जागृत अवस्था युक्त, शुभलेश्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाला और करण लब्धि को प्राप्त जीव ही सम्यक्त्व का लाभ कर पाता है।

× × × ×

नरदेहस्थमात्मानं अविद्वान् मन्यते नरम्।
अनन्तानन्त-धी-शक्तिः स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः॥

—मूढात्मा-बहिरात्मा-ही मनुष्य शरीर प्राप्त आत्मा को मनुष्य मानता है। विद्वान्-अन्तरात्मा की दृष्टि तो त्रैकालिक तत्व पर निहित रहती है। और वह उसका आस्वादन करता हुआ उसी आत्मस्वरूप में ठहरता है।

× × × ×

अवश्यं यदि नश्यन्ति स्थित्वापि विषयाश्चिरम्।
स्वयं त्याज्या स्तथाहि स्यान्मुक्तिः संसृतिरन्यथा॥

—यदि ये संसार के योग्य विषय बहुत समय तक टिक कर भी अवश्य ही नष्ट होते हैं तो बुद्धिमानी इसी में है कि उन्हें छोड़ दिया जाय। यदि हम उन्हें छोड़गे तो मुक्ति मिल सकती है और यदि उन्होंने हमें छोड़ा तो संसार-समुद्र में ही डूबना पड़ेगा।

× × × ×

तत्वज्ञानं च मोघं स्यात् तद्विरुद्धप्रवर्त्तिनाम्।
पाणौ कृतेन दीपेन किं कूपे पततां फलम्॥

—विरुद्ध आचरण करने वालों के तत्वज्ञान व्यर्थ है। हाथ पर दीपक रखकर भी कुए में गिरने वाले के उस दीपक से क्या लाभ।

× × × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यावन्न मेव्या विषयास्तावत्तानाप्रवृत्तितः ।
व्रतयेन् सव्रतो दैव न् मृतोऽमुत्र सुखायते ॥

जब तक विषय भोग की सामग्री तुम्हारे पास नहीं आयी है तब तक पुनः प्रवृत्ति पर्यन्त तो उसका त्याग कर दो । कदाचित् व्रत सहित मरण हो गया तो व्रत पूर्वक मरण होने से सांसारिक सुख तो प्राप्त होंगे।

× × × ×

अहमिक्को खलु सुद्धो दसण–णाण मइयो सयाऽऽरुवी ।
णावि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणु–मित्तंपि ॥

—मैं (आत्मा एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञान–दर्शन मय हूँ, सदा एक रूप रहित हूँ अन्य परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है।

णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तासं ।
कत्ता ण ण कारयिदा अणुमत्ता णेव कत्तीणं ॥

– मैं (आत्मा) शरीर नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ, मैं वाणी नहीं हूँ मैं उनका कारण नहीं हूँ, मैं इनका कर्ता नहीं हूँ, मैं इनका कराने वाला नहीं हूं, मैं इनके करने वालों का अनुमोदन कर्ता भी नहीं हूँ ।

× × × ×

अनन्त वीर्य–विज्ञान–दृगानन्दात्मकोऽप्यहम् ।
किन्तु प्रोन्मीलयाम्यद्य प्रतिपक्ष–विषद्रुमम् ॥

—मैं अनन्त वीर्य, अनन्त विज्ञान, अनन्त दर्शन आनन्द स्वरूप हूं—अब मैं कर्म रूप विष वृक्ष का क्यों न उन्मूलन करूं ?

× × × +

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरुपदेशादभ्याशात् संविक्तेः स्वपरान्तरम् ।
जानाति यः सजानाति मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥

—गुरु के उपदेश से, अभ्यास भावना से, स्वसंवित्ति से तथा अपने पराये के अन्तर–भेद-विज्ञान को जो जानता है वही शाश्वतिक मोक्ष सुख को जानता है।

× × × ×

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरमम् ।

—संसार में प्राणियों को अहिंसा ही परब्रह्म है क्योंकि अहिंसा आत्म स्वरूप में अवस्थिति है। शुद्ध आत्मा है, परब्रह्म है।

× × × ×

भावविशुद्धिणिमित्तं वाहिरगंथस्स कीरिए चाओ ।
वाहिर चाओ विहलो अब्भंतर गंथ जुत्तस्स ॥

—भावों की विशुद्धता के लिए वाह्य धन, धान्य वस्त्रादि परिग्रह का त्याग किया जाता है अंतरंग परिग्रह धारी का वाह्य त्याग विफल है।

× × × ×

जह जाय रूव सरिसो तिल तुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु ।
जह लेइ अप्प वहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं ॥

—यथा जात नग्न रूप को धारण करने वाला मुनि अपने हाथों में तिल तुष मात्र भी परिग्रह नहीं रखता है यदि वह थोड़ा बहुत परिग्रह रखता हैं तो वह निगोद पर्याय को प्राप्त होता है।

× × × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं वत्थुं मुतव्वं ज पडि उप्पज्जए कसायग्गी ।
तं वत्थुं सल्लियजो जत्थुवसम्मो कसायाणं ॥

—जिन कारणों से कषाय रूप अग्नि उत्पन्न हो वे सभी पदार्थ हेय हैं, जिनसे कषायों का उपशमन हो वे सभी वस्तुएँ उपादेय हैं।

प्रहतं मरणेन जीवितं जरसा यौवनमेष पश्यति ।
प्रतिजन्तु जनस्तथाप्यहो स्वहितं मन्द मतिर्न पश्यति ॥

—जीवन मृत्यु के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है, बुढ़ापे के द्वारा यौवन नष्ट होता है—यह बात प्रत्येक प्राणी के विषय में दृष्टिगत होती है फिर भी मन्द मति मानव अपना कल्याण नहीं देखता।

× × × ×

सम्यग्दर्शन-सम्पन्नमपि मातङ्ग-देहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्म-गूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥

—सच्ची दृष्टि—आत्म दर्शन—को प्राप्त चाण्डाल की आत्मा को भी देवों ने भस्म से ढके हुए अन्तः प्रकाशमान अंगारे के तेज की भांति देव कहा है।

× × × ×

भवन्त्यभि-प्रसन्नानि कश्मलान्यपि देहिनाम् ।
चेतांसि योगिसंसर्गाऽगस्त्य-योगे जलानि वत् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

--अगस्त्य तारा के उदय में जल की भांति प्राणियों के कश्मल-मलीन चित्त भी साधुओं के संसर्ग में प्रसन्न-पवित्र हो जाते हैं।

× × × ×

जना घनाश्च वाचालाः सुलभा स्यु र्व्यथोत्थिताः।
दुर्लभा ह्यन्तरार्द्रा स्ते ये जगदभ्यु जिहीर्षवः॥

--पीड़ाओं से उद्वेजित अतएव गर्जने वाले मेघों की भाँति हाय-हाय कर हल्ला मचाने वाले तो बहुत हैं पर संसार-सागर से पार होने की इच्छा रखने वाले अपने आत्म-रस से ही भीगने वाले--आत्मास्वादन में रत--लोग बहुत कम हैं।

× × × ×

णय कोवि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणइ उवयारं।
उवयारं अवयार कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥

--न कोई किसी को लक्ष्मी देता है, न कोई किसी जीव का उपकार करता है अपने द्वारा शुभाशुभ भावों से बाँधा गया कर्म ही शुभ--अशुभ फल को देता है।

× × × ×

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना॥

--जो घमण्डी घमण्ड से अपने सहयोगी धर्मात्माओं का तिरस्कार करता है वह अपने ही धर्म का तिरस्कार करता है--कारण धर्म धर्मात्माओं के बिना नहीं ठहरता।

× × × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करोतु न चिरं घोरं तपः क्लेशासहो भवान् ।
चित्त-साध्यान् कषायादीन् न जयेत्तदज्ञता ॥

—यदि कष्ट सहन में असमर्थ होकर तपश्चरण नहीं कर सकते हो तो मत करो पर चित्त की पवित्रता द्वारा साध्य कषाय विषय आदि को नहीं जीत सकते हो तब तो यह बड़ी भारी अज्ञता है।

× × × ×

विपत्स्तु प्रतीकारो निर्भयत्वं न शोकिता ।

—विपत्ति को दूर करने का उपाय निर्भीकता है शोक करना नहीं।

× × × ×

तीरस्थाः खलु जीवन्ति नहि रागाब्धि-गाहिनः ।

—तीर-किनारे-पर स्थित-तटस्थ (संसार के पदार्थों में राग द्वेष रूप विषमता को दूर कर-समता-को धारण करने वाला जीवित रहता है पर जो इस राग रूप समुद्र में-संसार में डूबे हुए हैं वे तो डूबे ही हैं उनका उद्धार कहां !

× × × ×

उत्तापकत्वं हि सर्वकार्येषु सिद्धीनां प्रथमोन्तरायः ।

—समस्त कार्यों में सिद्धियों में पहला विघ्न उत्तेजित होना अशान्त होना है।

× × × ×

अग्निरिव स्वाश्रयमेव दहन्ति दुर्जनाः ।

दुर्जन-मिथ्यादृष्टि-पुरुष अग्नि की भाँति अपने आश्रय आत्मा को ही जलाता है। अर्थात् अपने आधार भूत आत्मा को ही अपने राग द्वेष से मलीन करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुमन-सञ्चय

(१) अज्ञानी जीव संसारी भोग के लिए ही धर्म का श्रद्धान करता है, रुचि करता है, और धर्माचरण करता है, किन्तु मुक्ति के लिए वह धर्म नहीं करता।

—कुन्द कुन्दाचार्य।

(२) विपत्ति को दूर करने का उपाय निर्भय रहना ही है, शोक करना नहीं—इसलिए बुद्धिमानों को हँसते-हँसते विपत्ति का सामना करना चाहिए, रोना घोर कायरता है।

—वादीभसिंह सूरि।

(३) जो कर्मों को जीते वह जिनेन्द्र। जो सबसे ऊँचे पद में धारण कर दे, वह धर्म। जो धर्म का तीर्थ चलावे वे तीर्थंकर। जो राग-द्वेष रहित हो वह वीतराग। जो सबको जानने वाला हो और हित का उपदेश दे वह सच्चा देव-आप्त। जो जानता हो वह आत्मा है।

(४) साधु का नेत्र आगम है, संसारी प्राणी का चक्षु आँख है, देवो का चक्षु अवधि ज्ञान है, सिद्ध भगवान का चक्षु केवल ज्ञान है, अतः आगम का अभ्यास करो।

—कुन्द कुन्दाचार्य।

(५) यदि अपराधी पर क्रोध आता है, तो तुम्हारा सबसे बड़ा अपराधी तो स्वयं क्रोध है, उस पर क्रोध क्यों नहीं करते? जो चारों पुरुषार्थों को नष्ट कर देता है।

—वादीभसिंह सूरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महापुरुषों के विचारों में—

म. महावीर और जैन धर्म

(१) महावीर ने डिंडम नाद से हिन्द में ऐसा संदेश फैलाया कि धर्म मात्र सामाजिक रूढ़ि नहीं है परन्तु वास्तविक सत्य है, मोक्ष बाहरी क्रिया-काण्ड पालने से नहीं मिलता, परन्तु सत्य-धर्म स्वरूप में आश्रय लेने से ही मिलता है। धर्म और मनुष्य में कोई स्थायी भेद नहीं रह सकता। कहते आश्चर्य पैदा होता है कि इस शिक्षा ने समाज के हृदय में जड़ करके बैठी हुई भावना रूपी विघ्नों को त्वरा से भेद दिया और देश को वशीभूत कर लिया, इसके पश्चात् बहुत समय तक इन क्षत्रिय उपदेशकों के प्रभाव-बल से ब्राह्मणों की सत्ता अभिभूत हो गई थी।

—विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टेगौर

(२) देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं-धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है? धर्म यही है कि पाप से दूर रहें बहुत से अच्छे काम करें दया, दान, सत्य, और शौच (पवित्रता) का पालन करें। मैंने कई प्रकार चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगों को दिया है दोपायों, चौपायों, पक्षियों और जलचर जीवों पर भी मैंने अनेक कृपा की है। मैंने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैंने किये हैं। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा, वह पुण्य का काम करेगा।

—अशोक का एक शिलालेख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) जैन धर्म का अर्थ है संयम और अहिंसा। जहाँ अहिंसा है वहां द्वेषभाव नहीं रह सकता, दुनियां को यह पाठ पढ़ाने की जवाबदारी आज नहीं तो कल अहिंसात्मक संस्कृति के पोषक जैनियों को ही लेना पड़ेगी।

—सरदार वल्लभ भाई पटैल,

(४) श्री महावीर के उपदेशों पर अमल करने से ही वास्तविक शान्ति प्राप्त हो सकती है। इस महापुरुष के बताये हुए पथ का अनुकरण कर हम लोग शान्तिलाभ कर सकते हैं। आज का संघर्षशील और अशान्त संसार तो इस साधु पुरुष के उपदेशों पर ही चलकर सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है।

—स्व. डा. राजेन्द्र प्रसाद, भू. पू. राष्ट्रपति,

(५) संयम का लक्ष्य इन्द्रिय एवं मन का जीतना है संयम का ध्येय चिरसंचित कर्मों को धक्का मारकर निकालने का है। संयम करने वाला तपस्वी देह की छाती पर सवार होकर कर्मक्षय करता है। तपस्या कर्मक्षय की दवाई है।

—आचार्य शान्तिसागर जी,

(६) जैन धर्म सर्वथा स्वतन्त्र धर्म है मेरा विश्वास है कि वह किसी का अनुकरण नहीं है और इसीलिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्वज्ञान का और धर्म-पद्धति का अध्ययन करने वालों के लिए वह बड़े महत्व की वस्तु है।

—डा. हर्मन जेकोबी,

—एम. ए. पी. एच. डी.

--:※-:-०-:-※:--

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावना

सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबराये ।
वैर पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मङ्गल गाये ।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे ।
ज्ञान-चरित उन्नति कर अपना मनुज जन्म फल सब पावे ।।

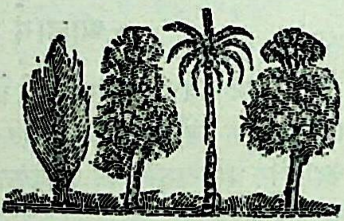

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारा प्रकाशित साहित्य

१–प्रशान्त गीतावलि—उदीयमान कवि श्री लक्ष्मणप्रसाद जी प्रशान्त के धार्मिक गीतों का मधुर संग्रह।

२–दीपमालिका पूजन विधान—श्रीमान् पं. मोतीलाल जी फौजदार प्रतिष्ठाचार्य द्रोणगिरि द्वारा सम्पादित दीपमालिका पर्व पर करने योग्य पूजन व धार्मिक रूप से दीपमालिका पूजन विधि।

३–जैन तत्वदर्शन—पाठकों के हाथों में।

४ शाकाहार—काका कालेलकर।

जो निकट भविष्य में आपके हाथों में होगा।

५–मध्य प्रदेश के जैन तीर्थों का परिचय-(सचित्र) लेखक—
समाज के धुरंधर विद्वान पं. दरबारीलाल जी कोठिया M. A. न्यायाचार्य
एवं
पं. विजयकुमार जी चौधरी साहित्याचार्य

६–पूज्य वर्णी जी के रत्नत्रय पर प्रवचन—सम्पादक—
श्रीमान् पं. गोरेलाल जी शास्त्री द्रोणगिरि
हाल–इम्फाल, मणिपुर

७–जैन धर्म का सरल परिचय—श्रीमान् पं. दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य M. A.
दर्शन विभाग–बनारस हिंदू विश्व विद्यालय

८–चौबीसी विधान – बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध कवि पं. देवीदास जी की अप्रकाशित कृति
सम्पादक—प. मोतीलाल जी फौजदार द्रोणगिरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारी साहित्य प्रकाशन योजना—

द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा संघ द्रोणगिरि की साहित्य प्रकाशन योजना में अपना अपूर्व सहयोग प्रदान कर धर्म और यश का लाभ लीजिए—

५०१) प्रदान कर अजीवन परम सहायक बनें।
प्रकाशन में सचित्र परिचय प्रकाशित किया जायगा।

२५१) प्रदान कर अजीवन सहायक बनें।
प्रकाशन में परिचय प्रकाशित किया जायगा।

१०१) प्रदान कर आजीवन सदस्य बनें।
प्रत्येक प्रकाशन में सहायकों की सूची में नाम प्रकाशित होगा।

२१) प्रदान कर सहायता दीजिए। उतने मूल्य का साहित्य आपको लौटा दिया जायगा। अपने यहां के मन्दिरों को भी इस प्रकार पूर्व ग्राहक बनाकर सहायता कीजिए।

संघ के प्रमुख उद्देश्य

(१) जैन युवकों की शक्ति को संगठित कर उसे समाज हित में लगाना।

(२) युवकों में जैनागम प्रतिपादित सदाचारमय जीवन की प्रेरणा देना।

(३) जैन बालकों को समुचित शिक्षाप्राप्ति के लिए प्रेरित करना व मार्गदर्शन देना। जैन संस्कृति, इतिहास, पुरातत्व के प्रति प्रम पैदा करना।

(४) स्वाध्याय शाला, रात्रि शाला व वाचनालयों आदि की स्थापना द्वारा समाज शिक्षण की प्रेरणा देना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) प्राचीन अप्रकाशित साहित्य को प्रकाश में लाना, नवीन प्रतिभाओं को साहित्य निर्माण की ओर प्रेरित करना।

(६) युवकों में भाईचारे की भावना पैदा करना।

(७) सामाजिक कुरीतियां को दूर करना।

(८) धार्मिक पर्वों और उत्सवों को जीवन्त बनाना।

लाभ लीजिए

१००८ श्री द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र द्वारा सञ्चालित गुरुदत्त आयुर्वेदिक रसायन शाला।

आज के युग में चिकित्सा क्षेत्र में एलोपेथी का प्रभाव बढ़ गया है पर उसका प्रभाव स्थायी नहीं। आयुर्वेदिक दवाओं के कारखानों में मिलावट के अतिरिक्त मद्य-मांस-मधु के त्यागी श्रावकों के योग्य शुद्ध औषधियों का निर्माण नहीं होता इस कमी की पूर्ति हेतु द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र कमेटी ने शुद्ध और पवित्र औषधियों के निर्माण की व्यवस्था की है जिसमें शुद्ध और पवित्र सब प्रकार की औषधियों का निर्माण होता है जो, त्यागीगण के उपयुक्त हैं, खासकर जैन समाज से निवेदन है कि यहां की पवित्र औषधियों का ही उपयोग करें।

पत्र व्यवहार का पता—

व्यवस्थापक—

गुरुदत्त दि० जैन रसायन शाला

मु. पो. द्रोणगिरि (सेंधपा) जि. छतरपुर म. प्र.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित ... उसके ...

अनुकरणीय

धर्मवत्सल साहित्य सेवी, उदार मना

श्रीमान् जैसराज जी सोहनलाल जी बगड़ा सुजानगढ़ हाल ढिबरूगढ़ ने अपनी स्व० पूज्यनीया मातेश्वरी श्री गुलाब बाई की पुण्यस्मृति में इस पुस्तक के प्रकाशन में ५०१) रुपया प्रदान किया है। इन साहित्यानुरागी बन्धुओं को संघ हृदय से धन्यवाद देता है।

श्री बगड़ा जी की स्वर्गीय मातेश्वरी बड़ी ही धार्मिक प्रकृति की थीं, हमेशा अपना समय पूजन, पाठ तथा स्वाध्याय, दान में बीताती थी। उन्होंने अपने समय में बहुतसा दान दिया। आप ७४ वर्ष की आयु में सुजानगढ़ में फागुन वदी ३० सं. २०२० को इस संसार से हमेशा के लिये चली गईं। आप अपने पीछे ५ पुत्र और १ पुत्री छोड़ गईं हैं। जो आपके समान ही सभी सच्चरित्र धार्मिक वृत्ति के हैं। आपके सुयोग्य सुपुत्रों ने आपकी स्मृति में ही इस पुस्तक के प्रकाशन में ५०१) रुपया प्रदान किया। समाज को श्री बगड़ा जी से अनुकरण कर धर्म प्रचार के प्रमुख साधन साहित्य का प्रचार करने में तन-मन-धन से सहयोग देना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi